# स्मृतियों के आर-पार

विमला गुगलानी 'गुग'

तरलोचन पब्लिशर्ज़, चण्डीगढ़

**Smrition Ke Aar Paar**

**by : Vimla Guglani (Gug)**

# 3200, Sector 40-D
Chandigarh.
Mob. 09888973200
Tel. : 0172-4623200
Email : vimlaguglani@gmail.com

Title designed by Abheshak Garg

First Edition : January 2016
Second Edition : June 2016

Price : Rs. 150/-

© Author

**Published by :**
Tarlochan Publishers
3236, Sector 15-D, Chandigarh
Phones: 98786-03236, 98146-73236
E-mail : tarlochanpublishers3236@gmail.com

---

**स्मृतियों के आर-पार,** लेखिका : विमला गुगलानी 'गुग'
**पेशकश :** रघबीर रचना प्रकाशन, चण्डीगढ़
**मुद्रक :** मोना इंटरप्राईजिस, दिल्ली

# समर्पण

पूजनीय **स्वर्गीय माता श्रीमती शान्ति देवी जी सेतिया**
और **स्वर्गीय पिता श्री लाजपतराय जी सेतिया** को
जिनके आर्शीवाद से मेरा यह किताब
लिखने का सपना पूरा हुआ।

# अनुक्रमिका


| | | |
|---|---|---|
| 1. | 'स्मृतियों के आर-पार' एक विलक्षण कृति | 5 |
| 2. | यादों को मिले शब्द | 8 |
| 3. | 'स्मृतियों के आर-पार' बहुमुखी शख्सियत का कमाल | 9 |
| 4. | 'स्मृतियों के आर-पार' अत्यंत सराहनीय प्रयत्न | 10 |
| 5. | 'स्मृतियों के आर-पार' यादों की अनूठी माला | 11 |
| 6. | मेरी बात | 12 |
| 7. | कुछ बातें, कुछ यादें | 15 |
| 8. | कुछ बातें पाकिस्तान की | 20 |
| 9. | पाकिस्तान को अलविदा | 25 |
| 10. | हिन्दुस्तान में प्रवेश | 28 |
| 11. | कुछ अनमोल रत्न | 64 |
| 12. | रोटियाँ | 79 |
| 13. | मेरे पापा | 80 |
| 14. | 1955 की सच्ची कहानी | 81 |
| 15. | माँ-बाप | 83 |
| 16. | गांव प्यारा गांव | 84 |
| 17. | विभिन्न अखबारों और पत्रिकाओं में प्रकाशित कुछ लेख | 86 |
| 18. | परिवार की पहली पोस्ट ग्रेजुएट | 88 |

## 'स्मृतियों के आर-पार' एक विलक्षण कृति

चर्चित लेखिका विमला गुगलानी की आत्मकथात्मक पुस्तक 'स्मृतियों के आर-पार' के विषय में विवेचनात्मक विचार व्यक्त करने के पूर्व गुगलानी जी के जीवन एवं उपलब्धियों के विषय में संक्षिप्त परिचय देना संगत होगा। श्रीमती गुगलानी भगवद्रूप माता शान्ति देवी की कोख से श्री लाजपतराय सेतिया जी के गृह में 10 मार्च, 1951 में सूरतगढ़ ज़िला श्री गंगानगर (राजस्थान) में पैदा हुईं। इन्होंने एम. ए. (इतिहास) और बी. एड की उच्च शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् पंजाब सरकार के शिक्षा विभाग में एस. एस. टी. टीचर (सामाजिक अध्ययन अध्यापिका) के रूप में कई वर्ष की सेवा की और 2009 में सेवानिवृत्त हुईं। यह वह समय था, जब कन्याओं की शिक्षा के प्रति हमारा समाज रुचि नहीं लेता था, लेकिन इस दृष्टि से ये भाग्यशाली रही हैं कि इन्हें सुंदर पालन-पोषण के साथ-साथा उच्च शिक्षा ग्रहण करने का भी अवसर मिला। जैसा कि इन्होंने बताया, लेखन के प्रति इनकी रुचि कालिज समय से ही पैदा हो गई थी। साथ ही स्वभावत: सहयोग, सेवा, सद्भावना और परस्पर स्नेह, सहानुभूति रखने जैसे सद्गुण इनमें विकसित होते गए। अपनी छोटी-छोटी कविताओं और लघु-निबंधों के माध्यम से लोगों का सही मार्ग-दर्शन करना, उसमें रहन सहन, आचार-व्यवहार में सरलता, स्वच्छता रखना और समय के मूल्य को समझना इनकी अभिलाषा के अवयव हैं। हिन्दी लेखन तो इनका विशाल है। इधर पंजाबी में भी इन्होंने कई कविताएं लिखीं, जो कि विभिन्न किताबों में छपी और काव्य गोष्ठियों में भी इन्होंने प्रस्तुत कीं। इनकी पंजाबी काव्य रचना में गहन रुचि को देखते हुए स्वर्गीय श्री केवल मानकपुरी अध्यक्ष, नंदलाल नूरपुरी साहित्य सभा (रजि.) चंडीगढ़ ने और जुलाई, 2015 में साहित्य कला सभ्याचार मंच (रजि.) मोहाली के अध्यक्ष श्री बाबू राम दीवाना ने इनका सम्मान किया।

'स्मृतियों के आर-पार' में लेखिका ने पाकिस्तान में अपने सेतिया परिवार तथा अन्य आत्मीयों की दशा और दिशा का, पाकिस्तान बनने यानि देश-विभाजन के दौरान हुए कतलोगारत और हैवानीयत के नंगे नाच के दृश्यों का हृदय विदारक चित्रण और इधर भारत में आकर पुनर्वास की समस्याओं से जूझते अपने परिवार और अन्य लोगों की कठिनाइयों और संघर्षों का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। जिसे पढ़कर संबंधित तो रोमांचित होंगे ही, साधारण पाठक भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाएगा। मैं इस बात से अचंभित हूं कि पापा और दादी, दादा से सुनी हुई घटनाओं और परिस्थितियों का वर्णन इन्होंने इतने ज्वलंत ढंग से किया है, जैसे कि सारा कुछ इनकी आंखों के सामने घटित हुआ हो। पढ़ते हुए मुझे ऐसे लगा जैसे चल-चित्र मेरे समक्ष चल रहे हों। आर-पार की घटनाओं, स्थितियों परिस्थितियों को अपनी स्मृतियों में समेटकर पाठकों के सामने सुंदर ढंग से परोसना इनकी कलम का कमाल है। सारे विवरण का पाठ करते हुए मेरे मानस पटल पर हिंदी जगत की महान कवयित्री महादेवी वर्मा की कृतियां 'स्मृति की रेखाएं' और 'अतीत के चलचित्र' उभर आईं।

मैं विमला गुगलानी जी के माता-पिता की महानता के समक्ष नतमस्तक होता हुआ इनके सभी सगे संबंधियों को साधुवाद कहता हूं और इनके पतिदेव श्री विनोद गुगलानी जी की भी भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूं जिनके पूर्ण सहयोग से विमला जी हिन्दी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना पाने की ओर अग्रसर हो चुकी हैं। इनके सुपुत्रों समीर और पंकज मेरे आन्तरिक आशीर्वाद के पात्र हैं जिन्होंने 'मातृ देवो भव' के आदर्श को अपनाया। सेतिया परिवार के सभी सदस्यों को बधाई जो बेटे बेटियों में फर्क नहीं समझते और साथ ही चुग परिवार, छाबड़ा परिवार और जो जो सेतिया परिवार के साथ दूर निकट का संबंध रखते हैं, मेरी हार्दिक शुभकामनाएं। लेखिका इस पुस्तक की रचना का उद्देश्य इस रूप में बताती हैं, 'मैं इस किताब को कुछ खास मकसद से लिख रही हूं। मेरे परिवार से संबंध रखने वालों के लिए तो ये जानकारी महत्वपूर्ण ही है, कोई और भी अगर पढ़ेगा तो उसे भी गुज़रे ज़माने के रीति रिवाज़ों के बारे में पता चलेगा।'

मैं लेखिका श्रीमती विमला जी के इस सराहनीय प्रयास के लिए हार्दिक शुभेच्छाएं देता हूं और इनके लिए कल्याण कामना करते हुए ''स्मृतियों के आर-पार'' का हार्दिक स्वागत करता हूँ। सुधी पाठकों से निवेदन है कि इस पुस्तक को पढ़कर लेखिका को अपने विचारों से अवगत अवश्य करवायें। ईश्वर विमला जी को दीर्घायु और इनकी कलम को सर्वहिताय सर्जन-शक्ति प्रदान करें। इति।

मंगलाकांक्षी,

**बाबू राम 'दीवाना'**
सहनिर्देशक (रिटा.) भाषा विभाग पंजाब
अध्यक्ष, साहित कला सभ्याचार मंच (रजि.) मोहाली।
मो. 094652-18029

दिनांक : 11 सितम्बर, 2015

# यादों को मिले शब्द

हर इन्सान का दिल अच्छी बुरी यादों से लबरेज़ होता है, लेकिन उन्हें कलमबद्ध करना सबके हिस्से नहीं आता। फिर से यादों के समुद्र में गोते लगाने होते हैं, उन पलों को फिर से जीना पड़ता है और वो बातें भी आंखों के सामने से गुज़रती हैं, जिनको इन्सान सपने में भी याद नहीं करना चाहता। जैसा कि लेखिका ने इस किताब 'स्मृतियों के आर-पार' में सन् सैंतालीस की त्रासदी का बयान किया है। भले ही इन्होंने ये सब नहीं देखा, लेकिन अपनों के दु:ख देखना और सुनना तो खुद की मुसीबत झेलने से भी बढ़कर मुश्किल होता है। उस समय के समाज की बुराइयों की तस्वीर भी बखूबी पेश की गई है। यह किताब पढ़कर आज की नई पीढ़ी को जहां पुराने समय की बातों का पता चलेगा वहीं अपने बजुर्गों की बहुत सी अच्छी अनुकरणीय आदतों को भी जान पायेंगे। वही देश, समाज और कौम तरक्की करती है जो अपनी जड़ों से जुड़ी रहती है और अपने बजुर्गों की इज्जत करती है। लेखिका के विभिन्न अखबारों और पत्रिकाओं में छपे लेख भी इनकी सामाजिक रुचियों और पारिवारिक संबंधों की बारीकियों को दर्शाते हैं। कविताएं भी दिल को छू लेने वाली हैं।

विमला गुगलानी उच्च कोटि की लेखिका के साथ-साथ कवियित्री, और गायिका भी हैं। अब तक आठ किताबों में पंजाबी में इनकी कविताएं छप चुकी हैं जो कि कुछ मैंने पढ़ी भी हैं। हिंदी और पंजाबी दोनों भाषाओं में इनकी बहुत अच्छी पकड़ है। साहित्यिक रुचियों के अलावा वे एक बहुत जागरूक नागरिक भी हैं। स्वभाव से भी बहुत मिलनसान और मददगार हैं। स्वतंत्र रूप में छपने वाली ये उनकी पहली पुस्तक है। दिल से मैं इनकी कामयाबी और सेहतमंदी की दुआएं मांगती हूं और बहुत बहुत मुबारकबाद देती हूं।

**गुरबख्श रावत**
कौंसलर वार्ड 9, डिप्टी मेयर, चंडीगढ़।

## 'स्मृतियों के आर-पार' बहुमुखी शख्सियत का कमाल

बहन विमला गुगलानी जी से मेरी जान पहचान कोई बहुत ज़्यादा पुरानी नहीं है, लेकिन जब जब भी मैं इनसे मिला, इनकी शख्सियत से बहुत प्रभावित हुआ। स्वर्गीय कवि केवल मानकपुरी जी द्वारा संपादित एक पंजाबी काव्य पुस्तक 'सधरां दी फुलकारी' में हम दोनों की कविताएं छपीं। इनकी कविताएं पढ़ कर मैं बहुत प्रभावित हुआ। बाद में अकसर हम कवि सम्मेलनों में मिलते। धीरे-धीरे मुझे पता चला कि इनकी रचनाएं विभिन्न अखबारों और मैगज़ीनों में छपती रहती हैं, जिनमें से कुछ मैंने भी पढ़ी हैं। थोड़ी सी रचनाओं को इस किताब में भी वर्णित किया गया है। पारिवारिक, सामाजिक विषयों पर लिखने में इनकी महारत है। पाक कला में भी काफी शौक रखती हैं। विभिन्न पत्रिकाओं और अखबारों में इनकी बहुत सी पाक विधियां छपी हैं। जिनसे इन्हें कई बार ईनाम मिल चुका है। टीचिंग से रिटायर होने के बाद इन्होंने योगा की और ध्यान दिया। बकायदा पंतजलि से प्रशिक्षण लेकर स्वयं प्रैक्टिस की और अब मुफ्त योगा कक्षा लेती हैं। सीनियर सिटीजन कौंसल चंडीगढ़, रिटायरी एंड सीनियर सीटिज़नस वेलफेयर कौंसल सैक्टर 39-40, कोच लीडरशिप सैंटर चंडीगढ़, के इलावा और भी बहुत सी सामाजिक संस्थाओं से जुड़ी हुई हैं। सभी प्रोग्रामों में उत्साहपूर्वक हिस्सा लेती हैं। कई किताबों की चर्चा में स्टेज पर हिस्सा ले चुकी हैं। सामाजिक विषयों में रुचि ने ही इन्हें ये पुस्तक लिखने के लिए प्रेरित किया है, जिसमें इन्हें अपने पति और बच्चों से पूर्ण सहयोग मिला। पुस्तक में सभी सच्ची घटनाओं का सजीव चित्रण किया गया है। मैं इनकी लेखनी से बहुत प्रभावित हूं। इनका यह प्रयास अत्यंत सराहनीय है। अंत में, मैं विमला गुगलानी जी की अच्छी सेहत और दीर्घायु के लिए प्रार्थना करता हूं और इस पुस्तक की आमद पर समस्त परिवार को बधाई देता हूं।

**भगत राम रंगाड़ा,**
सीनियर सिटीज़नस, कौंसल (रजि.), चंडीगढ़।
18-9-2015 मो. 9988747330

## 'स्मृतियों के आर-पार' अत्यंत सराहनीय प्रयत्न

हर लेखक अपनी लेखनी से अपने मन की बात कहने का प्रयास करता है। विषय कोई भी हो सकता है। इस किताब में बहन विमला ने ज़िंदगी की यादों को बहुत ही खूबसूरती से कलमबद्ध किया है। विभाजन के दंश से ग्रसित लोगों को मैंने अपनी आंखों से देखा है। मैं भी उसी इलाके का निवासी रहा हूं, जिसका वर्णन इस किताब में किया गया है। समय भले ही हर घाव को भर देता है, लेकिन कुछ घाव ऐसे भी होते हैं, जिनसे टीस उठती ही रहती है। देश का विभाजन ऐसा ही ज़ख्म है। मैं लेखिका के कई परिवारजनों को अच्छी तरह से जानता हूं। बहुत ही अच्छा, व्यवहार कुशल और मिलनसार परिवार है। उस ज़माने में लड़कियों की शिक्षा की और इतना ध्यान नहीं दिया जाता था। नौकरी करने वाली लड़कियां तो गिनती की होती थीं। जिस 'पंजकोसी' गांव के हाई स्कूल से इन्होंने नौकरी की शुरुआत की, उस ज़माने में वहां जाना इतना आसान नहीं था। यातायात के साधन नाम मात्र होते थे। बहुत पैदल चलकर या साईकिल से ही आना जाना संभव था। मैं तो यह कहूंगा कि इनका जीवन बहुत ही संघर्षमयी रहा है जो कि आने वाली पीढ़ियों के लिए मिसाल है। मुझे गर्व है अपने इलाके की इस बहन पर। इस किताब के अलावा मैंने इनकी लिखी मन को छूने वाली बहुत सी कविताएं और रचनाएं पढ़ी हैं। भगवान इनको अच्छी सेहत, लंबी उम्र और कलम को और भी ताकत दे ताकि ये साहित्य और समाज की सेवा कर सकें और आशीर्वाद देता हूं कि इनकी नूरानी शख्सियत सूरज, चांद की तरह रोशनी फैलाती रहें।

**प्रेम ग्रोवर**
निवास 1486, सैक्टर 40-बी,
चंडीगढ़।
मो. 9417134007

**प्रेमचंद ग्रोवर**
70-एच ब्लाक,
न्यू प्रेम टैंट हाउस,
रविंद्र पथ, श्रीगंगानगर (राज.)

## 'स्मृतियों के आर-पार' यादों की अनूठी माला

इस पुस्तक में अपनी यादों को शब्दों के मोतियों की माला में गूंथने का काम विमला जी ने बखूबी निभाया है। मुझे गर्व है कि इनकी रुचि लेखन और अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों में रहती हैं। सेतिया परिवार से जुड़ना मेरी खुशकिस्मती है। ये बहुत ही मेहनती, ईमानदार और रिश्तों को निभाने वाली गरिमामय महिला हैं। पारिवारिक गतिविधियों में ये पूरा साथ निभाती हैं। जब ये नौकरी करती थी तो अपने काम के प्रति पूरी तरह समर्पित थीं। बच्चों के प्रति अपने उत्तरदायित्म अच्छी तरह निभाने के फलस्वरूप ही तो आज दोनों बेटे उच्च शिक्षित और संस्कारवान हैं। सामाजिक गतिविधियों में भी इनकी रुचि रहती है। सामाजिक विषयों पर इनकी रचनाएं अकसर छपती रहती हैं। कुछ रचनाएं इस किताब में बानगी के रूप में भी पेश की गई हैं। पंजाबी लेखन में भी रुचि है। कई किताबों में इनकी कविताएं और लेख छप चुके हैं। पाक कला में भी पारंगत हैं। कई रेसिपीज़ प्रकाशित हो चुकी हैं और कई बार इनाम हासिल कर चुकी हैं। स्टेज संभालने के अलावा गीत, गज़ल और शायरी भी कर लेती हैं। लगभग चालीस साल के साथ में कभी इन्होंने मुझे शिकायत का मौका नहीं दिया। परिवार और समाज में इनका अपना अलग ही रुतबा है। इनकी सेहत, उम्र, खुशियों और लेखनी के लिए बहुत सी शुभकामनाएं और मंगलकामना।

**विनोद गुगलानी**
(रिटायर्ड) सीनियर लैब टैक्निशियन
पंजाब इंजीनियरिंग कालिज, चंडीगढ़।
मो. 9872616948

## मेरी बात

लिखने पढ़ने के शौक का सारा श्रेय मेरे पूजनीय स्वर्गीय माता-पिता को है। अगर मैंने थोड़ा समय पहले ही किताब लिखने की हिम्मत की होती तो मैं उनके चेहरे की खुशी देख पाती। लेकिन ये हो न सका। उनके जीते जी भी मेरा बहुत कुछ छप चुका था। पापा जी हमेशा मेरी हौसला अफ़्ज़ाई करते थे। क्योंकि मेरे माता जी तो हिंदुस्तान में ही थे, इसलिए उन्हें पाकिस्तान के बारे में ज़्यादा जानकारी नहीं थी। सारी जानकारी मुझे पापा, दादा, दादी जी से मिली। दादी जी से मेरी बहुत ही दोस्ती और प्यार था। जब भी फुर्सत मिलती, हम घंटों बातें करते। मेरे विचार में तो घर के बुज़ुर्ग घने छायादार पेड़ के समान होते हैं। जो संस्कार बचपन में उनसे मिलते हें, वो ज़िंदगी भर का सरमाया होता है। दादी जी अकसर ही अपने पाकिस्तान वाले घर और वहां की बातें किया करती थीं। बचपन में तो कुछ समझ नहीं आता था, लेकिन बाद में मैं उनका और बाकी रिश्तेदारों का, देशवासियों का दु:ख समझ पाई। शिक्षा एक ऐसा दीपक है, जिससे ज़िंदगी की राहें रोशन हो जाती हैं, मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ। मुझे अपनी अध्यापिकाएं बहुत अच्छी लगती थीं। मन में आ गया कि मैं भी वैसी बनूं। वैसे भी उन दिनों लड़कियों के लिए ज़्यादा मौके नहीं थे। बैंक में नौकरी का मौका मुझे मिल रहा था, लेकिन घर वाले भी नहीं चाहते थे और मुझे टीचिंग पसंद थी, इसलिए मैंने होस्टल में रह कर 1972 में संगरिया (राजस्थान) से बी. एड. की और रिजल्ट से पहले ही अबोहर में प्राइवेट स्कूल में नौकरी मिल गई।

पापा जी ने अखबार, पत्रिकाओं का बहुत अच्छा इंतज़ाम घर पर ही कर रखा था, उस समय वह भी बड़ी बात थी। लोग अखबार भी कम ही खरीदते थे। हमारे घर में बहुत पहले से ही रेडियो होता था। आजकल के बच्चे हैरान होंगे, लेकिन ये सच्चाई है कि लोग एक दूसरे के घर जाकर रेडियो सुनते थे। तभी तो पुराने गाने सुनना और गाना मुझे

आज भी बहुत पसंद है। पता नहीं कब मेरी रुचि लिखने में हो गई। शायरी में भी मेरा रुझान कालिज के समय से ही था। ज़िम्मेदारियों के चलते सब शौकों पर धूल जम गई थी, लेकिन समय मिला तो मैंने धूल झाड़ने की कोशिश की, और इसमें पूरा सहयोग दिया मेरे पति श्री विनोद कुमार गुगलानी जी ने। मेरे बेटे समीर और पंकज जो कि उच्च शिक्षित हैं, उन्होंने भी मेरा हौसला बढ़ाया। जब भी मेरी कोई रचना छपती हमारे घर के माहौल में उत्सव छा जाता और तो और मेरी सुंदर, संस्कारी, अत्यंत शिक्षित और गुणवान बहुएं नन्दनी और श्वेता जो कि आधुनिक गेजेटस में माहिर हैं, उन्होंने मुझे कम्प्यूटर इत्यादि की बहुत जानकारी दी, मेरे काम को आसान बना दिया। दोनों हर समय मेरे काम में मदद करने के लिए तैयार रहती हैं। और प्यारी पोती सना को देखकर उसकी बातें सुनकर तो सारी थकान वैसे ही छूमंतर हो जाती है। मैं इन सभी की अत्यंत धन्यवादी हूं।

लिखने के लिए मुझे प्रेरित करने में मेरे सगे मामा डॉ. अमर चंद चुग जी का बहुत सहयोग है जो कि समय समय पर मुझे अपने अमूल्य विचारों से नवाज़ते रहते हैं। मामा जी बैंक से बहुत बड़े पद से रिटायर हैं और बैंकिंग पर लिखी इनकी पुस्तकें मार्केट में बिकती हैं। मेरी छोटी बहनें रेनू नागपाल, और बबीता बतरा तथा छोटे भाई राजन और आकाश सेतिया और उनके परिवारों की भी मैं अत्यंत आभारी हूं। अपने देवर शशीकांत गुगलानी की भी बहुत कृतज्ञ हूं, जो मेरी रचनाएं पढ़कर मेरा हौसला बढ़ाते हैं। मैं धन्यवादी हूं प्यारे बच्चों अमित पुरी और अभिषेक गर्ग का जिन्होंने पेपर वर्क में मेरी बहुत मदद की।

इस किताब को लिखने में सबसे ज्यादा सहयोगी विद्वान, बुद्धिजीवी कवि, शायर, लेखक श्रीमान बाबू राम दीवाना (रिटा.) सहायक डायरेक्टर भाषा विभाग, पंजाब तथा अध्यक्ष, साहित्य कला सभ्याचार मंच (रजि.) मोहाली का अपनी बहुत सी व्यस्तताओं में से मेरी किताब के लिए समय निकालना मेरे लिए बहुत बड़े सौभाग्य की बात है। दिल की गहराइयों से मैं इनकी धन्यवादी हूं। तहे दिल से आभारी हूं मैं, मेरे वार्ड नं. 9 की कौंसलर और चंडीगढ़ की अत्यंत खूबसूरत, मेहनती और सुलझी हुई

डिप्टी मेयर मैडम गुरबखश रावत जी की, जिन्होंने अपना कीमती समय निकाल कर मेरे और मेरी किताब के लिए अपने अनमोल विचार दिए। इसके अलावा मशहूर कवि-संपादक-मंच संचालक श्रीमान भगतराम जी रंगाड़ा, बहुत बड़े बिजनेसमैन और समाज सेवी श्रीमान प्रेम चंद जी ग्रोवर का भी उनके सुंदर विचारों के लिए शुक्रिया। मैडम कश्मीर कौर ने भी मेरा साहस बढ़ाया और अपने कीमती विचारों से नवाज़ा। उसके लिए धन्यवाद। मेरे गुरु और गाईड, बेजोड़ शख्सियत के मालिक स्वर्गीय श्रीमान केवल मानकपुरी जी को मैं कभी नहीं भूल सकती, भगवान उनकी आत्मा को शांति और अपने पवित्र चरणों में स्थान दे, क्योंकि राह दिखाने वाले तो वही थे। उनका धन्यवाद और मैं उनसे हाथ जोड़ कर आशीर्वाद मांगती हूं।

सुधी पाठकगण के करकमलों में अपनी यह पुस्तक हर्षोल्लास के साथ अर्पित करते हुए निवेदन है कि इसे पढ़ने के पश्चात अपने विचारों एवं सुझावों से मुझे अवगत करवाने की कृपा करें।

प्यारे पाठकों और रिश्तेदारों की पुरज़ोर माँग को देखते हुए मुझे अपनी पहली एकल पुस्तक का दूसरा संस्करण छपवाने की बहुत खुशी है। मैं सभी पाठकों की दिल से आभारी हूँ, जिन्होंने मेरी हौसलाअफजाई की। मैं यहाँ पर एक बात बताना चाहूँगी, पहले संस्करण में मैंने अपने अखबारों और मैगज़ीनों में छपे कुछ लेख हूबहू छपवाए थे, लेकिन पुराने होने के कारण कुछ स्पष्ट नहीं थे। दूसरे संस्करण में असल तो रहेंगे ही लेकिन उन्हें अलग से लिख कर छापा गया है ताकि पढ़े जा सके। सभी का बहुत-बहुत धन्यवाद। अगर आप सब की दुआएँ इसी तरह मिलती रही तो जल्द ही मेरी अगली किताब आप के हाथों में होगी। ये असर है, माँ बाप की दुआओं का कि मेरे कदम मंज़िल की ओर अग्रसर हैं।

मैं धन्यवादी हूं स्थापित प्रकाशक सरदार त्रिलोचन सिंह जी तथा उनके स्टाफ की, जिन्होंने मेरी पुस्तक को सुंदर आकार दिया।

**विमला गुगलानी**
3200, सैक्टर 40-डी, चंडीगढ़।
मो. 9888973200
0172-4623200

# कुछ बातें, कुछ यादें

मेरी यह किताब जिसके हाथ में भी है, मैं उसकी बहुत धन्यवादी हूँ, कि कम से कम इस नाचीज़ की किताब को आपके हाथ में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि, आखिर यह किताब लिखने का मेरा मक़सद क्या है ? क्योंकि न तो मैं कोई बहुत बड़ी मशहूर हस्ती हूँ, न ही मैंने या मेरे परिवार ने ऐसे कोई काम किए है, जिन्हें कलमबद्ध करने की ज़रूरत है। लेकिन फिर भी यह ज़रूरी नहीं कि यह हक़ किसी ख़ास का हो। यादें, सपने, इच्छाएँ, आशाएँ, तो हर कोई रख सकता है। कुछ यादगार लम्हें हर किसी के जीवन में होते है। बचपन तो किसी को कभी भूलता नहीं। एक बहुत प्यारा गीत है,कोई लौटा दे मेरे बीते हुए दिन, बीते हुए दिन , वो मेरे प्यारे पल छिन। बीते हुए दिन तो किसी के वापिस नहीं आते, लेकिन यादों में उन दिनों को जीया जा सकता है। अपने बहुत ही प्यारे, जो अब इस दुनिया में नहीं हैं, उन्हें याद किया जा सकता है, उन्हें सच्चे मन से श्रद्धांजलि दी जा सकती है। और जो हमारे साथ है, उनके लिए मंगल कामना करते हुए, उनकी दीर्घ आयु की प्रार्थना की जा सकती है। मुझे लिखने का शौक कब हुआ, ठीक से याद नहीं, लेकिन इतना ज़रूर याद है कि जब मैं अबोहर (पंजाब) के डी. ए. वी. कालिज में पढ़ती थी, तब कालिज मैगजीन में दो बार मेरी रचनाएँ छपी थीं। बाद में भी पढ़ने का शौक बहुत रहा। पढ़ने से मतलब मैगज़ीनो, पत्रिकाओं से है। पढ़ाई में तो मैं ठीकठाक सी थी। वैसे भी उन दिनों पढ़ने की और बढ़िया अंक प्राप्त करने की आजकल की तरह मारामारी नहीं थी। लड़कियों की पढ़ाई की तरफ बहुत कम ध्यान दिया जाता था। हमारे परिवार में पढ़ने और नौकरी करने वाली मैं पहली लड़की थी, बाकी सब बाद में ही पढ़े हैं। कालिज के बाद लिखा तो नहीं लेकिन घर परिवार की तमाम व्यस्तताओं के बाद भी मैं पढ़ती रही। कालिज टाईम में मैंने

बहुत नावल पढ़े। उन दिनों नावल पढ़ने का बहुत रिवाज़ था। उन दिनों मैंने रोमांटिक नावल पढ़े, लेकिन जब मेरी नौकरी लगी तो स्कूल की लाईब्रेरी में मुंशी प्रेमचंद और नानक सिंह जी के काफी नावल थे, जो कि मैनें सारे ही पढ़ डाले थे। जब बच्चे थोड़े बड़े हुए तो मेरा लिखने का शौक फिर से जाग गया। मेरे घर पर पत्रिकाएँ नियमित रूप से आती थीं। पढ़ने के शौक का सारा श्रेय मैं अपने पूजनीय पिताजी को दूंगी । शुरू सें ही उन्होनें हम सब बच्चों के लिए घर पर पत्रिकाएँ लगा कर रखी हुई थीं। हाँ तो, मैं अपने लिखने के बारे में बात कर रही थी। कई बार थोड़ा थोड़ा मैनें लिख कर भेजना शुरू किया, खाने पकाने में रुचि होने के कारन मैने कई बार रेसिपी भी भेजी। लेकिन कुछ नहीं छपा। मैनें बहुत कोशिश की,कि कहीं से मुझे कुछ गाईडैंस मिल जाए, लेकिन कोई नहीं मिला। मैनें भी लिखना नहीं छोड़ा। कोशिश जारी रखी। एक दिन महानगर कहानियाँ नामक पत्रिका में किसी समस्या पर भेजा गया मेरा सुझाव तीसरे स्थान पर आया और मुझे उस पत्रिका की मुफ्त प्रति के साथ पाचँ सौ रूपए का चैक भी मिला। शायद ये बात वर्ष 2000 की रही होगी। उसके बाद दैनिक भास्कर मधुरिमा में मेरी सलाद की रेसिपी को प्रथम स्थान प्राप्त हुआ, जिसकी एवज़ में मुझे दो बार ग्यारह ग्यारह सौ रुपए मिलें। पैसे मिलने की ख़ुशी तो थी ही, उससे ज़्यादा खुशी मुझे छपने की हुई थी। फिर तो कई बार मेरी रेसिपी, छोटी छोटी रचनाएँ विभिन्न पत्रिकाओं और अखबारों मे छपी। साउथ की एक मसाला कंपनी में मेरी एक रेसिपी को तीन हज़ार का ईनाम और गिफ्ट भी मिला। इसके बाद काफी कुछ छपा। अभी सितंबर, 2015 में मेरी सहेली पंत्रिका में भी मेरी एक रचना को स्थान मिला है। रुझान तो मेरा था, पर मैं समय नहीं निकाल पाती थी। लिखने के विषय तो बहुत होते हैं, लेकिन मेरा ध्यान अपने आसपास की घटनाओं और सामाजिक मुद्दों पर ज्यादा होता है। मैं पहले हिंदी में ही लिखती थी। रिटायरमेंट के बाद मेरी मुलाकात पंजाबी के एक महान कवि और गायक स्वर्गीय केवल मानकपुरी जी से हुई। उन्होने मुझे पंजाबी में लिखने के लिए प्रेरित किया। अब मैनें कुछ कविताएँ पंजाबी में लिखीं। मानकपुरी जी विभिन्न कवियों की कविताएँ

ईकट्ठी करके, उन्हें किताब का रूप दे देते थे। मेरी कुछ कविताएँ जब पहली बार किताब में छपीं तो मेरी खुशी की सीमा न थी। मेरी पहली साँझी किताब का नाम हैं 'संधरा दी फुलकारी'। इसके बाद चार और सांझीं कविताओं की किताबें छपी, जिनके नाम हैं, 'महफ़िल शबदां दी', महकां दे दरिया, नीला अबंर,अर्शदीप इसके इलावा बाबा बंदा सिंह बहादुर पर छपी एक किताब में दो कविताएँ, 'बज़ुर्ग साडा सरमाया' नामक किताब में एक कविता, ऐसी ही कुछ छपाई अधीन भी है। मानकपुरी जी की इस दुनिया से अचानक विदाई पंजाबी काव्य जगत के लिए और मेरे लिए बहुत दु:खदाई है। वो मेरे गुरू और गाईड थे लेकिन हम कुछ नहीं कर सकते। सिर्फ़ उनके दिखाए रास्ते पर चलने की कोशिश ही की जा सकती है। मुझे कवि दरबारों में, सीनियर सीटिजंस के प्रोग्रामों में तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों में जाने का मौक़ा भी मिलता रहता है। काफी कवियों से मुलाकात होती रहती है। बहुत से लेखकों , कवियों की किताबें पढ़ी तो मेरे दिल में भी अपने परिवार के बारे में किताब लिखने का विचार आया।

मेरी दिलचस्पी सामाजिक और ऐतिहासिक विषयों में ज़्यादा है। मेरी इस किताब में मैनें कुछ ऐसी घटनाओं का ज़िक्र किया है, जो कि विभाजन के समय मेरे परिवार के साथ घटी। हिन्दुस्तान पाकिस्तान का बँटवारा संसार की मुख्य ऐतिहासिक घटना है, और मेरे परिवार ने इसे देखा है,भुगता है। मेरे पापा, दादी जी, दादा जी तथा और भी बहुत सी रिश्तेदारो से उन दिनों की बातें सुनने को मिली। उन दिनों ये घटनाएँ बिल्कुल ताज़ी थी, जिनका ज़िक्र मैनें आगे चल कर किया है।

इसके इलावा हर समय में ,हर समाज में कुछ अच्छाइयाँ और कुछ बुराइयां होती हैं, उनमें से कुछ सच्ची बातों का वर्णन करने की भी मैनें कोशिश की है। मेरे माता-पिता की मँगनी कब हुई, उन्हें याद भी नहीं था। शादी के समय में भी बहुत कम उम्र थी। मैनें अपने परिवार में और आसपास बाल विवाह तो नहीं देखे, लेकिन छोटी उम्र यानि की सोलह सत्रह की उम्र की लड़कियों की शादी होती तो देखी है। गाँव की बात तो एक तरफ़, अबोहर में मेरे साथ पढ़ने वाली कई लड़कियों की शादी भी दसवीं के बाद हो गई थी। इतिहास में मेरी बहुत रुचि रहती है। मेरा

यह मानना है कि हर आदमी को अपनी ,अपने पूर्वजों की, अपनी विरासत की जानकारी होनी चाहिए। आजकल के बच्चों की रुचि किताबों को पढ़ने में घटती जा रही। कई स्कूलों में तो बहुत सी पढ़ाई, परीक्षा, टैस्ट, तथा और भी बहुत कुछ कम्प्यूटर पर ही हो जाता है। कई बातों का इससे लाभ तो है, लेकिन किताबों की बात ही कुछ और ही है। मैनें अपनी जानकारी के मुताबिक कई पुराने रीतिरिवाज़ों का, कई पारिवारिक जनों की अच्छी बातों का ज़िक्र किया है, जिससे आज की पीढ़ी अपने बज़ुर्गों को जानने के साथ साथ उनकी अच्छी बातों को ग्रहण कर सकें। आजकल बच्चे सुखसुविधाओं के इतने आदी होते जा रहे हैं कि वे उनके बगैर रहने की कल्पना भी नहीं कर सकते। जिन सामाजिक कुरीतियों के बारे में आज इतिहास में पढ़ने को मिलता है, उन दिनों वो हमारे समाज में, आसपास घरों में यहाँ तक कि परिवार में भी देखने को मिलती थीं। उन दिनों औरतों के पुनर्विवाह की प्रथा नहीं थी। फिर चाहे बाल विवाह की शिकार उस औरत को अपने पति की शक्ल भी न याद हो। पुरूष प्रधान समाज में कई कई बच्चो के बाप की अपने से भी आधी उम्र से भी कम उम्र की लड़की से शादी हो जाती थी। कई बार तो बच्चे सौतेली माँ से भी बड़ी उम्र के होते थे, जैसा कि पुराने ज़माने की कई फिल्मों में देखने को मिलता है। जब तक कानून नहीं बना था, बहुपत्नी प्रथा भी थी, बट्टे की शादी भी होती थी। यानि कि जिनकी बेटी ली, उसी घर में बेटी दे दी। इससे लेन देन बराबर का हो जाता था। लेकिन आजकल ये रिवाज़ नहीं है। कुछ सरकारी नियम बन गए है और लोग बहुत पढ़ लिख गए हैं, लोगों में बहुत जागरूकता आ गई है। मेरा विषय ये नहीं है कि, पुराने रीती रिवाज़ अच्छे थे या बुरे, मेरा विषय सिर्फ उनके बारे में जानकारी से है। अगर किसी रिवाज़ में कोई बुराई होती है, तो अच्छाई भी होती होगी। मेरी एक रिश्तेदार थी, जिनके बच्चा नहीं हुआ। उन दिनों दूसरी शादी करने की कानूनी मनाही नहीं थी। पत्नी की सहमति से पति ने दूसरी शादी कर ली। दूसरी शादी से पैदा हुए बच्चों ने दोनों माताओं को बराबर का सम्मान दिया, और दोनों पत्नियों में भी बहनों सा प्यार ताउम्र रहा। जैसा कि मैनें पहले कहा है, हर सिक्के के दो पहलू

होते है। अब न वो रिवाज़ हैं और न ही वो बातें है, सब कुछ बदल चुका है, परिवार भी सिमट कर छोटे हो गए हैं। गावों को छोड़ कर लोग शहरों में रहना पंसद करते हैं। मुझे गर्व है अपने परिवार पर जिसमें नई पीढ़ी बहुत पढ़ लिख गई है और बहुत से क्षेत्रों में सफलता प्राप्त कर ली है। भगवान सब को खुश रखें और बुरी नज़र से दूर रहें। पढ़ाई हो या बिजनस, काफी कामयाबी हासिल की है। मैं तो यही चाहती हूँ कि सब आगे बढ़ें, कामयाबी हासिल करें और आपसी प्यार बना रहे। सबसे बड़ी बात अपनी जड़ों से जुड़े रहें। आप किसी भी कामयाब इन्सान के बारे में, किसी सिलेब्रिटी के बारे में पढ़ कर देखे सब की सफलता के पीछे परिवार के सहयोग का ही हाथ होता है। अपनी जड़ें सब को अच्छी लगती है। कुछ दिन पहले मैनें अख़बार में पढ़ा कि एक अंग्रेज़ गुजरात के एक गाँव में उस मकान को ढूंढ रहा था जहां कभी आजादी से पहले उसके परदादा रहा करते थे। पता नहीं कितनी मुश्किल से वो वहां तक पहुँचा होगा। कुछ सोच कर ही मैनें ये किताब लिखने का फ़ैसला किया है। विभिन्न जगहों पर नौकरी करते वक्त मुझे बहुत से लोगों से मिलने का मौक़ा मिला। बहुत से लोगों के परिवारों से भी मेल जोल रहा। मुझे लगा कि मेरे परिवार में बहुत से लोग अनुकरणीय है। जिनमें से कुछ का ज़िक्र मैं आगे चल कर करूँगी। बच्चे का पहला स्कूल उसका घर परिवार ही होता है। मेरी इस किताब का मक़सद पारिवारिक जानकारी, कुछ भूली बिसरी बातें है, जो कि हमेशा मेरे ज़हन में रहती हैं, सोचा आपसे भी सांझी कर लूँ, शायद आपको भी अच्छी लगें।

**इक दिन चमकें सूरज बनकर,**
**और रोशन कर दें दुनियाँ जहाँ।**
**इतना गरूर तो नहीं है, मगर**
**'जुगनू' सी रोशनी तो रखते हैं।**

# (माननीय सेतिया परिवार) कुछ बातें पाकिस्तान की

विभाजन से पहले पाकिस्तान में बहावलनगर (अब वह ज़िला बन चुका है) के हरूनाबाद नामक स्थान पर मशहूर सेतिया परिवार के मुखिया श्रीमान माछीराम जी सेतिया का परिवार रहा करता था जिनके तीन बेटे थे क्रमश: जिनके नाम श्रीमान निहाल चंद जी, श्रीमान होतचंद जी और श्रीमान टोपनदास जी थे। मेरी दादी जी बताया करती थीं कि इन तीनों भाइयों की एक बहन भी थी जो शादी के बाद जल्दी ही स्वर्ग सिधार गई थी, इसलिए उनके बारे में और कोई जानकारी प्राप्त नहीं है, लेकिन जिस लड़की की शादी इनकी बहन के स्थान पर हुई उनसे भी इनके संबंध अपनी बेटी जैसे ही रहे। बदकिस्मती से दो बेटों को जन्म देने के बाद उसको भी प्रभु से बुलावा आ गया और उनमें से बड़े बेटे स्वर्गवासी रामदयाल मिड्ढा जी का पालनपोषण मेरी दादी जी ने किया। ये परिवार आजकल श्री गंगानगर (राजस्थान) में रहता है और दूसरा बेटा था स्वर्गवासी श्री धरमचंद जी मिड्ढा जिनका लालनपालण उनके ननिहाल में हुआ और वह परिवार अलवर (राजस्थान) में रहता है।

तीनों भाईयों के पास ज़मींदारी के अलावा दुकानों का काम भी था जो कि हरूनाबाद, फकीरवाली और शहरफरीद में था। एक और गाँव चिसतियां मंडी का ज़िक्र भी कई बार सुनने में आता था लेकिन किसका काम कहाँ पर था,इसके बारे में मुझे जानकारी नहीं है। जो कुछ मैं वर्णन कर रही हूँ उसकी जानकारी मुझे अपनी दादी जी, दादा जी और पापा जी तथा कुछ ख़ास रिश्तेदारों से प्राप्त हुई जिनका ज़िक्र मैं आगे चलकर करूँगी। चूँकि पापा की शादी बँटवारे के बाद हिन्दुस्तान में हुई इसलिए मेरे माताजी को भी कुछ ज़्यादा मालूम नहीं था। वैसे थे तो मेरे ननिहाल वाले भी बहावलनगर से है लेकिन वे कई साल पहले ही कामकाज के सिलसिले में अनूपगढ़ बस गए थे जो कि ज़िला श्रीगंगानगर, राजस्थान में पड़ता है। यह गाँव जो अब क़स्बा बन चुका है, विभाजन के समय

बीकानेर रियासत का हिस्सा था। इसलिए खुशकिस्मती से मेरे ननिहाल वालों को विभाजन की त्रासदी नहीं झेलनी पड़ी और मेरे पापा का गाँव पश्चिमी  पंजाब में था इसलिए हमारे सारे परिवार ने वह कभी न भूलने वाला दु:ख सहा है। हमारे परिवार पर प्रभु का बहुत बड़ा उपकार रहा है कि सारा परिवार सही सलामत भारत की सरज़मीं पर पहुँच गया। वरना उस समय के जो हालात थे कोई खुशकिस्मत परिवार ही ऐसी तक़दीर वाला होगा। मेरे साथ काम करने वाली एक टीचर बताया करती थी कि उस दिन यानि की15 अगस्त 1947 वाले दिन उसके ससुर, जेठ और ददिया ससुर तीनों को बवालियों ने मौत के घाट उतार दिया था जबकि उस समय वे तीनों अलग-अलग शहरों में थे। अति सम्पन्न परिवार के लोगों को शरणार्थियों सा जीवन जीने की मज़बूरी थी। मेरे दादाजी यानि श्रीमान टोपन दास जी सेतिया जो की तीनों भाइयों में सबसे छोटे थे, बताते थे कि कैसे वे अपने दोनों भाइयों और माता-पिता एवम् बाक़ी परिवार जनों के साथ ऊंटों पर बैठकर अपना बसा बसाया घरबार ज़मीन जायदाद छोड़ कर आए थे। भारत पाकिस्तान का विभाजन और उस समय की अमानवीय घटनाओं से इतिहास भरा पड़ा है लेकिन हमारे परिवार पर दाता की मेहर रही, मानसिक और आर्थिक आघात तो बहुत था लेकिन मान-सम्मान बरक़रार था और सभी पारिवारिकजन पूर्णतया सुरक्षित थे। यहाँ पर मैं उस समय घटने वाली कुछ घटनाओं का ज़िक्र करूँगी जो कि मुझे मेरी दादीजी ने बताई थी। मेरी दादी श्रीमती प्यारी बाई अनपढ़ होने के बावजूद बहुत ही चुस्त, वाकपटु, सुलझी हुई, व्यवहार कुशल और मेलमिलाप वाली गरिमामयी महिला थी। मेरा अपनी दादी जी से बहुत लगाव और प्यार था। हम दोनों घंटों बातें करते थे। मुझे उनसे पुराने समय की बातें करना बहुत अच्छा लगता था। और वे भी मुझे पाकिस्तान के समय की खूब बातें सुनाया करती थी। शायद इसी शौक के कारण ही मैनें एम. ए. करने के लिए इतिहास का विषय चुना। उस ज़माने में बिजली नहीं हुआ करती थी, लोग लालटेन या दिए जलाकर रात को घरों में रोशनी किया करते थे। अकसर उन दिनों लोग अंधेरा होने से पहले ही खाना खा लिया करते थे और जल्दी सो कर जल्दी ही उठने

का प्रयास करते थे। दिन चढ़ने तक तो घर के बहुते से काम निपटा लिए जाते थे।जैसे कि  कुओं, तालाबों, नहरों या जैसे भी पानी उपलब्ध होता था औरतें पानी भर कर लाती थीं। मिट्टी के मटकों का उपयोग पानी भरने के लिए किया जाता था। एक बड़ा मटका सिर पर जिसे कि ईनू या सीनू (कपड़े से बनाया हुआ बहुत सख्त गोला सा) पर रखा जाता था और फिर उसके ऊपर एक थोड़ा छोटा पीतल का बर्तन और एक हाथ में पानी की बाल्टी भी पकड़ी होती थी। आजकल सुनने में शायद किसी को यकीन न आए लेकिन ये बिल्कुल सच्चाई है जो कि पाकिस्तान बनने के बाद भी बहुत सालों तक प्रचलित थी और मैनें अपने रिश्तेदारों को अनूपगढ़ और रामसिंह पुर में इस तरह पानी भरते देखा है और जब मैं वहाँ जाती थी तो मैं भी कोई छोटा सा बर्तन उठा कर उनके साथ चल देती थी। सुबह शाम कई कई चक्कर लगा कर जल की पूर्ति की जाती थी। नहाना, कपड़े धोना, कुछ बर्तन धोना ,नित्य कार्य से निपटना ये सब काम काफ़ी हद तक घर से बाहर ही होते थे और पानी की उपलब्धि भी काफ़ी दूर जा कर होती थी। औरतें बड़े चाव से झुंड बनाकर बातें करती करती ये सारे काम सम्पन्न करती थीं। सुबह जल्दी उठ कर गाय भैंसों को  चारा डालना,दूध निकालना,साफ़ सफ़ाई तथा पशुओं से संबंधित और भी न जाने कितने काम होते थे जो कि अक्सर घर के मर्द करते थे लेकिन कुछ विशेष परिस्थितियों में औरतें भी कर लेती थीं। उन दिनों हाथ से चक्की पर पीस कर आटा घर पर ही तैयार किया जाता था। दही बिलोना, घी तैयार करना और बाक़ी सारे घर के काम सुबह ही निपटा लिए जाते थे। चाय का कोई चलन नहीं था। दूध, दही, छाछ का प्रयोग होता था। खाना सुबह शाम बनता था।आजकल की तरह सुबह नाश्ता नहीं होता था। लेकिन खाने की कमी नहीं होती थी। दिन में खाने के लिए हमारे घरों मे बहुत सी चीज़ें जैसे कि तरह तरह की पिन्नियां, चना, गेहूं, मक्की तथा और भी कई अनाजों के बने मरूंडे( अनाज को भून कर उसमें गुड़ गरम करके मिलाकर लड्डू ) बनाए जाते थे। इसके अलावा भूने हुए दाने, बेर, गन्ने और भी कई तरह की चीज़ें घरों में बहुत पड़ी रहती थीं। खाना चूल्हों, तंदूरों पर लकड़ियों और गोबर के बने उपलों पर ही बनता था।

आजकल की तरह गिन कर रोटियाँ नहीं बनती थीं। सुबह की बची रोटियाँ शाम को और रात की बची रोटियाँ सुबह हम बच्चे शौक से खाते थे। सुबह एक सब्ज़ी और शाम को दाल बनती थी।किसी मेहमान के आने पर या त्यौहारों पर खीर, चावल, हलवा बनता था।सच बताऊँ तो हम बच्चों को मेहमानों का आना बहुत अच्छा लगता था क्योंकि उम्र के हिसाब से बातें करने खेलने के अलावा अच्छे पकवान भी खाने को मिलते थे। आज की तरह उन दिनों घूमना, फिरना, सैर करना नहीं होता था। ज़्यादातर शादी ब्याह ,तीज त्यौहार,या सुख दु:ख में रिश्तेदारी में ही जाना होता था।

मैं वापिस पाकिस्तान की बात करूँगी। मैं अपने सेतिया परिवार के साथ-साथ अपने ननिहाल चुग परिवार की बात के अलाव थोड़ी सी बात मेरी माताजी के ननिहाल छाबड़ा परिवार की भी करना चाहूँगी क्योंकि उनके ज़िक्र के बिना मेरी बात अधूरी रह जाएगी। क्योंकि मेरी नज़र में वह परिवार भी अपने आप में एक मिसाल है। पहले मैं अपने परिवार की बात करती हूँ। बँटवारे से पहले श्री माछी राम जी सेतिया यानि मेरे परदादा जी अपने तीनों शादी शुदा बेटों के साथ ऊपर ज़िक्र किए गए स्थान पर रहते थे। उस इलाक़े में उन दिनों लोग अपना सफ़र ऊँटों पर तय करते थे। अनूपगढ़ जो कि आज हिन्दुस्तान का आख़री कस्बा है,उसके बाद पाकिस्तान की सीमा शुरू हो जाती है।वहाँ पर रिश्तेदारी के कारण मेरे दादा जी का काफी आनाजाना लगा रहता था। पहले अपनी जानकारी के मुताबिक़ मैं अपने तीनों परिवारों की बात करूँगी । बड़े दादा निहालचंद जी के दो बेटे एक केसरचंद और दूसरे मोहनलालजी जिनका घर परिवार जैतसर राजस्थान में है। दूसरे दादा होतचंद जी जिनके बेटों के नाम मुशीं राम,भगवानदास, गिरधारी लाल, बसंत, आसाराम और मुरारीलाल जी है। बड़े ताया मुंशी राम जी का देहान्त तो बहुत पहले हो गया था और कुछ साल पहले ताया गिरधारीलाल जी का भी देहान्त हो गया था। इन में कुछ परिवार जैतसर में हैं और कुछ जयपुर में सैटल हैं। ताया गिरधारी लाल जी के तीनों बेटे अर्जुनदास, रविकुमार और महिंद्र सेतिया जयपुर में है और अपने परिवारों के साथ अति खुशहाल ज़िंदगी

जी रहे हैं। परमात्मा से सभी की खुशहाली और लम्बी उम्र की प्रार्थना करती हूँ। श्रीमान माछीराम जी के सबसे छोटे बेटे यानि टोपनदास जी के केवल एक ही सुपुत्र थे श्रीमान लाजपतराए जी,जो कि मेरे पूजनीय पिताजी थे। मेरी माताजी का नाम श्रीमती शान्तीदेवी था जो कि अनूपगढ़ निवासी श्रीमान बालकिशन दास की सबसे बड़ी संतान थीं। बाक़ी परिवार का विवरण मैं आगे चलकर दूँगी। मेरे पापा का कोई सगा भाई बहन नहीं था लेकिन अपने चचेरे भाई बहनों से उनके संबंध बिल्कुल अपनों जैसे थे। हमारी कज़न बुआ और उनके परिवार आज भी श्री गंगानगर, पीलीबंगा, सूरतगढ़ और श्री विजयनगर में रहते हैं। पीलीबंगा वाली बुआ हर साल पापा को राखी भेजती थी और एक राखी पापा की मासी की बेटी श्रीमती नारायणी देवी अनूपगढ़ से भी हमेशा भेजती थी। इत्तिफ़ाक से अनूपगढ़ वाली बुआ की शादी भी सेतिया परिवार में हुई थी। फूफा जी का नाम श्रीमान गेलाराम जी था और उनके एक भाई श्री मान लालचंद जी थे। ये दोनों परिवार आज भी अनूपगढ़ में हैं और रामसिंहपुर में रहने वाले सेतिया परिवार के लोग जिनमें श्रीमान रामकिशन जी सेतिया और इनके बड़े भाइयों के परिवार भी हमारी रिश्तेदारी में ही हैं। ये दोनों परिवार मेरे दादाजी के कज़न भाइयों के परिवार हैं। अगर कोई मेरी ये सच्ची जानकारी के बारे में पढ़ रहा होगा तो ज़रूर ये सोचेगा कि मुझे परिवार के बारे में इतनी जानकारी कैसे है,जबकि मेरे पापा तो अपने माता-पिता की इकलौती संतान थे और मेरे पापा तो अबोहर (पंजाब) में रहते थे, तो मैं आपको बता दूँ कि एक तो उन दिनों लोगों में प्यार और अपनापन बहुत था, आपस में बहुत ही मेल जोल और आना-जाना लगा रहता था। आजकल की तरह लोग केवल अपने परिवार तक ही सीमित नहीं रहते थे। परिवार तो परिवार पूरा गांव ही अपना लगता था और दूसरा यह कि मेरे पापा श्रीमान स्वर्गीय लाजपतराए जी बहुत ही हँसमुख और अत्यंत ही मिलनसार स्वभाव के व्यक्ति थे। मेरे पापाजी 27 फ़रवरी 2010 को लगभग 78वर्ष की उम्र में और माता जी 24 मार्च 2014 को लगभग 79-80 साल की उम्र में प्रभु चरणों में लीन हो गए।

# पाकिस्तान को अलविदा

इस भाग में मैं अपने सेतिया परिवार का ज़्यादा ज़िक्र करूँगी।पाकिस्तान से हिंदुस्तान आने से ही बात शुरू करूँगी। जैसा कि सभी जानते हैं, 15 अगस्त 1947 से पहले भारत पर अंग्रेज़ों का राज था। भारत आज़ाद तो हो गया लेकिन बहुत बड़ी क़ीमत के साथ। आम लोगों को अंदेशा नहीं था कि उन्हें अपने बसे बसाए घर छोड़ कर इस तरह रिफ्यूजी बनना पड़ेगा। मैनें सुना है कि सूरतगढ़ में अभी भी एक जगह का नाम रिफ्यूजी मोहल्ला है। एक तो उन दिनों संचार के साधन इतने विकसित नहीं थे और शिक्षा का प्रसार भी इतना नहीं था। मुझे बहुत गर्व है इस बात का मेरे पापा उस ज़माने में अपने ख़ानदान में यानि कि माछी राम जी के पोतों में मैट्रिक पास करने वाले पहले लड़के थे और अगली पीढ़ी की लड़कियों में सबसे पहले 1966 में मैनें मैट्रिक पास की थी। लोग ये सोचकर उस समय घरों से निकले थे कि वे जल्दी ही वापस आ जायेंगे लेकिन वे यह नहीं जानते थे कि फिर कभी भी वे अपनी मातृभूमि के दर्शन ही नहीं कर पाएँगे। कई लोग बाद में सरकार की मदद से वापस जाकर अपना क़ीमती सामान लेकर आए हैं, लेकिन हमारे घरों में से कोई भी गया हो, यह मैनें नहीं सुना। मेरी एक सहेली बताया करती थी कि उसकी दादी आते-आते दूध की बालटी इस तरह ढक कर आई थी जैसे कि वे दो चार घंटे में वापस आ जाएँगे। लेकिन हाय री किस्मत लोगों ने क्या-क्या देखा और क्या-क्या सहा इसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता लेकिन हमारे परिवार की किस्मत बहुत अच्छी थी कि जान और मान दोनों कि रक्षा प्रभु ने की और धीरे-धीरे अपनी मेहनत और सरकार की मदद से अपने पाँव जमा लिए।

दादी ने बताया कि कैसे वे अपना घर बार छोड़ कर आए। वही लोग जो कल तक हमारे अपने थे, कुछ तो हमारे घरों और खेतों में काम करते थे, आज वही बलवई बन कर हमारे घरों में घुसने की कोशिश

में थे,हमें लूटने के लिए हमारे घरों के दरवाज़े पीट रहे थे। घरों में सबने जो सामान बन पड़ा उठाने की कोशिश की लेकिन आखिर कोई कितना सामान उठा सकता है और वो भी तब जब मौत सिर पर नाच रही हो। सब लोग छत पर चढ़ कर पिछले दरवाज़े से भागने की कोशिश में थे लेकिन दादी अभी नीचे ही खड़ी थी।उस ज़माने में बैंक तो न के बराबर थे, इसलिए दादी ने अपने काफ़ी सारे गहनें किसी बर्तन में डालकर एक बड़े कमरे में जिसमें गेहूँ की बोरियाँ भरी पड़ी थीं, बीचों बीच ज़मीन खोद कर गाड़ कर रखे हुए थे, निकालने की कोशिश कर रही थीं। उस ज़माने में घर कच्ची मिट्टी के हुआ करते थे और एक रुपए के सिक्के चाँदी के हुआ करते थे, इसलिए लोग अपना धन,गहनें इसी तरह छुपा कर रखते थे।काग़ज़ के बहुत कम नोट चलन में थे। दादी बेचारी अकेली औरत कैसे गेहूँ की भरी बोरियाँ उठा पाती। फिर उसे अपने इकलौते बेटे यानि के मेरे पापा जिन्हें वो प्यार से लज्जू कहती थी का ध्यान आया तो वे बाहर आंगन में आकर बेटे का नाम ले कर उँची-ऊँची पुकारने लगी। बाहर दरवाज़ा खटखटाया जा रहा है, सब लोग छत पर खड़े थे इस इतंज़ार में कि कब दादी भी ऊपर छत पर आए तो सब लोग पिछले दरवाज़े से रवाना हों, लेकिन दादी को तो अपना बेटा दिखाई नहीं दे रहा था तो वो कैसे ऊपर आए। अब आतंकवादियों के डर से कोई बोल भी नहीं रहा था तभी मेरे दादाजी को एक तरकीब सूझी, उन्होंने जूती उतार कर दादीजी के उपर फैकीं तो उन्होंने घबरा कर ऊपर देखा और पापा के बारे में पूछा तो उन्होंने इशारे से चुप होने को कहा और पापा को उठा कर बनेरे से दिखाया और ऊपर आने का इशारा किया। सभी लोग ऊंटों पर सवार हो कर अनजान दिशा की और जा रहे थे। कोई भी नहीं जानता था कि भविष्य में क्या होने वाला है।दो चार कपड़े बर्तन और एक पीतल का कटोरदान जिसमें पिन्नियां थीं, कुल यही समान दादी जी साथ ले पाई थी। एक बात मैं और दादी जी के बारे में शेयर करना चाहूँगी। अपने ज़माने में वो अपने परिवार में जानी मानी शख्सीयत थी। क्योंकि उनकी मायकी जात जुनेजा थी, इसलिए उन्हें अक्सर लोग जनवेजी कह कर पुकारते थे।

बहुत ही बोल्ड महिला थी। लम्बी, पतली और साँवला रंग, लेकिन रोबदार व्यक्तित्व । एक बार एक हिरण से भिड़ गई थी और उसे चित कर दिया। तभी से उन्हे हिरणी चाची का नाम भी मिला था। मैं ये बातें इसलिए बता रही हूँ कि वे अनपढ़ होने के बावजूद भी बहुत ही सूझवान और दूरदर्शी थीं। उन दिनों पुरूष भी नहीं पढ़ते थे,औरतों की पढ़ाई के बारे में तो सोचा भी नहीं जा सकता। यह ठीक है कि पढ़ाई की अपनी जगह है, लेकिन अगर उस ज़माने में लोग पढ़े-लिखे नहीं थे, फिर भी उनके हिसाब किताब रखने के और बही खाते सभांलने के भी नायाब तरीके थे। तब औरतें दरियाँ बुनने से लेकर, हाथ से ही सिलाई, कढ़ाई कर लेती थीं। हाथ वाली पक्खियाँ बनाना, नाले बुनना, और एक और काम वे बखूबी करती थी, और वो था, बहुत ही सुंदर सरपोस (रोटियाँ रखने का डिब्बा), छिक्कू, ज़मीन पर बैठने की चटाई इत्यादि वो बनाती थीं। उन दिनों गेहूं मशीनों से नहीं निकाला जाता था। गेहूं निकालने के बाद लंबे लंबे तिनके जिनकी पशुओं के लिए तूड़ी बनती है, उस सामग्री से ये चीज़े बनती थीं, और कई बार तो औरतें खुद खेतों में जाकर ये सामान लाती थीं और विभिन्न तरह के रंगों की मदद से बहुत सुंदर सामान तैयार करती थीं। मेरी मम्मी भी इस काम में माहिर थे। आजकल ऐसी वस्तुएँ प्रदर्शनियों में देखने को मिलती हैं। मैं दादी जी की समझदारी की बात कर रही थी,उन्होंने बताया कि सुनने में आता था कि शायद देश के टुकड़े हो जाएँ और हमें घर बार छोड़ कर जाना पड़े। उन दिनों मीडिया आज जैसा नहीं था। बहुत कम अख़बार निकलते थे और पढ़ने वाले भी कहीं कहीं मिलते थे। कभी किसी को कोई सरकारी चिट्ठी या कोई काग़ज़ पढ़वाना होता तो बहुत बड़ी समस्या होती। दूर दराज़ के स्कूल मास्टर ही ये काम करते थे। चूँकि पापा की मँगनी बचपन में हो गई थी, शायद उस समय वे सात-आठ साल के रहे होगें और मम्मी पांच छह साल की होगी, उस समय मेरे नाना जी अनूपगढ़ में रहते थे,तो दादी जी ने दादा जी को बिना बताए दो बड़े बड़े ट्रंक नए कपड़ों के भर कर अनूपगढ़ भिजवा दिए थे जो कि बाद में पापा की शादी में काम आए। मम्मी पापा की शादी 30 जनवरी, 1948 को उसी दिन हुई जिस दिन महात्मा गांधी की हत्या हुई थी।

# हिन्दुस्तान में प्रवेश

सब लोगों का काफिला ऊंटों पर सवार हो कर जा रहा था। सभी उदास और सहमें हुए से अनजान दिशा की और बढ़े जा रहे थे। रास्ते में मिल्टरी की चैकिंग भी चल रही थी। पापा जी और दादी जी का ऊँट सबसे आगे था। जब जब ऊँट चलता तो पापा को दादी जी से छन्न-छन्न की आवाज़ आती। चूंकि दोनों एक ही ऊँट पर सवार थे। जैसा कि मैं पहले बता चुकी हूँ, दादी अपने ज़माने की अत्यंत स्मार्ट महिला थी। दादी जी ने अपने एक लहंगे में अंदर की ओर काफ़ी जेबें लगा रखी थीं और उनमें चाँदी के सिक्के और ज़ेवर भर रखे थे। चलते वक्त वो ज़मीन के अंदर गाड़ा हुआ धन तो नहीं निकाल सकी लेकिन वह जेबों वाला लहंगा पहन लिया था। अब बच्चे की उत्सुकता, वो बार-बार दादी की जेब छू कर पूछते इसमें क्या है इसमें क्या है? और दादीजी कहते, यहाँ मत छुओ, मेरे फोड़ा हो गया है। तुम्हारे हाथ लगाने से दर्द हो रहा है। पापा जी ने फिर हाथ नहीं लगाया, लेकिन जब नाके पर चैकिंग हुई तो दादी का ऊँट सबसे आगे होने के कारण उनसे पूछा कि, कुछ पैसा है तुम्हारे पास। तो दादी जी पागलो की एकंटिग करते हुए आगे निकल गई। बच्चे चूँकि सच बोलते हैं, इसलिए पापा ने सिक्कों के बारे में बताने की कोशिश की लेकिन किसी ने बच्चे की ओर ध्यान नहीं दिया। किस्मत अच्छी थी, पीछे और लोग भी आ रहे थे, आनन फ़ानन में इनका काफिला सही सलामत आगे निकल गया और भारत की जो निर्धारित सीमा थी, वहाँ से सभी को मिल्टरी की गाड़ियों में सूरतगढ़ में लगे शरणार्थियों के कैम्प में पहुँचा दिया गया। कल तक जो बहुत बढ़िया जीवन बिता रहे थे, जिनकी ज़मीनों पर अपने कुएँ लगे हुए थे ,जिनकी ज़मीनों पर कितने लोग काम करते थे, जिनके बच्चों की आढ़त की दुकानें थीं आज वहीं लाला माछीराम जी सेतिया अपने तीनों बेटों और परिवारों के साथ लाईन में बैठ कर सरकार  की और से रिफ्यूजियों को बांटा जाने वाला खाना

खाने को मजबूर थे। वक्त-वक्त की बात है। किस्मत जो दिन दिखाए, देखने ही पड़ते है। पाकिस्तान बनने के शायद दो तीन साल बाद ही दोनों यानि की पापा के दादी-दादी स्वर्ग सिधार गए थे। तब मैं साल भर की थी।

असलीयत तो वे ही जानते हैं जिन लोगों ने वो दिन देखे हैं, भुगते हैं, हम तो सिर्फ़ कल्पना भर ही कर सकते हैं। सब लोगों को मिलने उनके हिंदुस्तान में रहने वाले रिश्तेदार आ रहे थे। सरकार की और से ओर लोगों के साथ मेरे घरवालों को भी रहने के लिए छोटी सी जगह मिली थी और लोगों के पास ज़रूरत भर का समान भी नहीं था। जब मेरे नाना जी हमारे घर मिलने के लिए आए तो दादी जी ने खाने के लिए चीज़ें तो बना लीं, लेकिन परोसने के लिए उनके पास बर्तन नहीं थे ऐसे मौक़े पर दादी जी की आँखो में आँसू आना स्वाभाविक ही था। लेकिन मजबूरी थी।

**मम्मी पापा की शादीः-** पाठक ये न सोचे कि मैं मम्मी पापा की शादी का ज़िक्र क्यों कर रही हूँ, शायद बोर महसूस करें लेकिन ऐसा नहीं है, जैसा कि मैंने पहले भी जिक्र किया है मैं इस किताब को कुछ ख़ास मक़सद से लिख रही हूँ। मेरी माँ की मँगनी जब हुई तो उनकी उम्र छः या सात वर्ष की रही होगी। मेरे दादा जी तीन भाई थे। मँझले दादाजी श्रीमान होतचंद जी के बेटे स्वर्गीय गिरधारी लाल जी की पत्नी श्रीमती लज्जा देवी (भगवान उन्हे लम्बी उम्र दें) मेरी माताजी की सगी बुआ हैं, उन्होंने ही मेरी माताजी की मँगनी अपने चचेरे देवर यानि कि मेरे पिताजी से करवाई थी। पापा जी की उम्र मम्मी से दो साल बड़ी थी। यानि कि एक भाई की बहू बुआ, तो दूसरे भाई की होने वाली बहू उसी की भतीजी थी। मज़ेदार बात देखिए, कि इत्तिफाक से हमारे परिवार में दो बेटियाँ एक ही घर में ब्याहने की परंपरा आज भी चलन में है और कामयाब है। जैसा कि मैनें पहले कहा है कि मैं पुराने रीति रिवाज़ों का ज़िक्र करूँगी, ताकि आज की नई पीढ़ी अगर ये किताब पढ़े तो उसे भी पुरानी बातों का पता चल सके। उन दिनों मँगनी में आजकल की तरह तामझाम नहीं होता था। आजकल की तरह उन दिनों फल नहीं

मिला करते थे। अपने खेतों में उगने वाली कच्ची सब्ज़ियों के साथ कुछ देसी मिठाइयाँ शगुन में दी जाती थीं। बहुत ही सादा जीवन था उन दिनों।। मेरे दादाजी अपने गाँव (जो अब पाकिस्तान में है) से अक्सर ऊंट पर काम के सिलसिले में अनूपगढ़ आया करते थे। एक बार जब दादाजी अनूपगढ़ आए तो पापा भी साथ आ गए जब नाना जी यानि कि श्री बालकिशन जी के घर पहुँचे तो सब बड़े लोग अपने कामों और बातों में लग गए और बच्चे यानि की मम्मी पापा जो ये भी नही जानते थे कि वे आपस में मंगेतर हैं, खेलने लग गए। जब वापिस जाने का समय हुआ तो दादाजी ने पापा को वापिस जाने के लिए आवाज़ लगाई। जब पापा वापिस जाने के लिए मुड़े तो मम्मी ने लपक कर उनका हाथ पकड़ते हुए कहा, अभी नहीं जाने दूँगी, अब तुम्हारी बारी (टर्न) है,यह सुन कर सब हँसने लगे और दादाजी पापा का हाथ छुड़वाकर हँसते हुए बोले, बेटी , अब जाने दो , बहुत देर हो रही है, फिर किसी दिन आकर तुम्हारी बारी दे देगा। और मेरे पापा का स्वभाव बहुत ही मज़ाकिया था। वो हमेशा मम्मी जी को छेड़ते थे, उस दिन की तुम्हारी बारी ऐसी सिर पर चढ़ी कि अब तक नहीं उतरी, अब तो ये सारी उम्र ही भुगतनी पड़ेगी और हम सब हंस पड़ते।

पाकिस्तान से आने के बाद मेरे परिवार वालों को सूरतगढ़ में कैंप में रहने के बाद वहीं पर छोटी सी जगह रहने को मिली। थोड़ा व्यवस्थित होने के बाद, दादी जी की इच्छा थी कि पापा की शादी कर दी जाए। दादा जी मना कर रहे थे क्योंकि उन्हें पैसों की चिंता थी, लेकिन दादी जी के उस जादुई लहंगे (जिसका ज़िक्र मैं पहले कर चुकी हूं) में इतने रुपए, गहनें थे कि शादी आराम से हो सकती थी। कपड़ों के दो ट्रंक तो पहले आ ही चुके थे, जिनकी जानकारी दादा जी को नहीं थी। मैनें दादी जी से पूछा कि उन्होंने दादा जी को क्यों नहीं बताया, तो वो कहती थी कि, वे नहीं मानते थे। सच ही तो है, ऐसी अनहोनी होगी, कोई सोच भी नहीं सकता था और आम लोगों तक देश की बाते पहुँचती भी कहां थीं। हमारा परिवार गाँव में रहता था। कुछ सुनी सुनाई बातें ही पहुँचती थी। अगर इतिहास में देखे तो विभाजन की बात काफी पहले तय हो

गई थी, बटंवारा तो ज़मीनों का होना था, लेकिन जो कुछ हुआ उसका तो किसी को गुमान भी नहीं था। कोई नहीं जानता था कि इन्सानों का भी बंटवारा हो जाएगा। कुछ शातिर और सियासी लोगों ने अपनी गंदी चालें चलीं। लोगों की भावनाओं को कुछ इस क़दर हवा दी कि सब जल उठा। देखा देखी बदले की आग भड़क उठी और लोग ये सोच कर घर छोड़ आए थे कि सब शांत हो जाएगा और वे अपने घरों में वापिस आ जाएँगें। लेकिन ऐसा कुछ हुआ नहीं। ये सब गद्दी पाने की चालें थीं जिन्हें आम जनता कहां समझ सकती है। मेरी एक सहेली अबोहर में मेरे साथ पढ़ती थी। उसके चाचा मिलटरी में थे। वो बताती थी कि उसके घर वालों को पता था कि ऐसा कुछ होने वाला है और उन्होंने पहले ही घर का सारा इंतज़ाम कर लिया था, सारा सामान तक बेच दिया था और अबोहर में सुखेरा बसती के मुसलमानों के उस मकान को भी चुन रखा था, जिस पर उन्हें क़ब्ज़ा करना था और उन्होंने वही किया। पढ़े लिखे लोगों को कुछ हालात की जानकारी शायद हो गई थी, लेकिन आम जनता को कुछ पता नहीं था। पापा ने दसवीं पास हिन्दुस्तान में आकर की और वह भी शादी के बाद। एडमिशन होनी आसान नहीं थी। स्कूल वाले किस बच्चे को किस क्लास में रखें, यह तय करना मुश्किल था। जब पापा एडमिशन लेने गए तो उनसे पूछा गया कि आपके पास कोई कापी किताब है तो दिखाओ। अब पापा की हाजिर जवाबी देखिए, उन्होंने अध्यापक से कहा, अगर हमें किताबें उठाने की मोहलत मिलती तब ही उठाते और उठाते भी तो खाने पीने का समान और पैसे उठाते। तभी तो कहते है कि जिस तन लागे वो ही जाने, दूसरे क्या जाने। शादी के बाद पापा ने गंगानगर में पढ़ाई की थी और उनकी पढ़ाई छठी क्लास से शुरू हुई थी जबकि सातवीं से होनी चाहिए थी। मज़े की बात यह कि जब पापा ने दसवीं पास की तो मैं लगभग पाँच वर्ष की होने वाली थी। इधर पापा को फाज़िल्का में स्टेट बैंक आफॅ बीकानेर एडं जयपुर में गडाऊन कीपर की नौकरी मिली और साथ ही मेरी एडमिशन वहीं पर सरकारी स्कूल में पहली क्लास में हुई। सरकारी रिकार्ड में पापा की जन्म तिथि 1934 है और मेरी 1951 है। अगर पापा की एक दो साल

कम भी लिखी हो तो भी पापा की और मेरी उम्र का अन्तर अठारह और मम्मी से तो शायद सोलह साल का रहा होगा। बात हो रही थी हिन्दुस्तान में आकर पापा की शादी  की। अभी तक कोई क्लेम नहीं मिले थे, कोई काम नहीं था, वो तो जो कोई थोड़े बहुत पैसे कोई ला पाया उसी से बामुश्किल रोटी चल रही थी। बहुत सा सोना और चाँदी के सिक्के तो पाकिस्तान वालें घर में ज़मीन में गड़े ही रह गए थे। पापा की इच्छा थी, वापिस जा कर एक बार अपनी जन्मभूमि देखने की, लेकिन किस्मत में नहीं लिखा था। अगर कुछ लोग घर जोड़ने वाले होते है, तो तोड़ने वालों की भी कमी नहीं होती। शादी की तारीख पक्की करने की जब बात चली तो मम्मी जी के कुछ रिश्तेदारों ने नाना जी को रिश्ता तोड़ देने की सलाह दी, क्योंकि पाकिस्तान से आने वाले लोगों के पास कुछ भी नहीं था। उस समय वो रिफ्यूजी और ग़रीब थे। ऐसी होती है कुछ लोगों की मानसिकता। अगर किसी ने डा. अमर चंद चुग जी की परिवार पर लिखी किताब पढ़ी होगी तो उन्हे ज़रूर याद होगा कि उसमें मेरे नाना जी और उनके रिश्तेदारों की मंगनियां टूटने का ज़िक्र किया गया है, और उसका कारण पैसा, व्यापार में घाटा पड़ना। वो लोग तब बहावलनगर से काम धंधों में घाटा पड़ने के कारण ही अनूपगढ़ शिफ्ट हुए थे। लेकिन मम्मी पापा का रिश्ता मम्मी की बुआ लज्जा देवी जी के कारण बच गया। उन्होंने हिम्मत कर के इस बात का विरोध किया और अपने चचेरे देवर और अपनी भतीजी का रिश्ता टूटने नहीं दिया, और आज भी इस परिवार का हमारे परिवार से गूढ़ रिश्ता है और अब तो आगे से आगे बच्चों के कई और रिश्ते जुड़ने के कारण और भी प्रगाढ़ता आ गई है। और जिस दिन शादी होनी थी उसी दिन यानि कि तीस जनवरी उनी सौ अड़तालीस के दिन महात्मा गांधी की मृत्यु हो गई। सरकार ने ढोल बाजे पर प्रतिबंध लगा दिया। लेकिन दादी ने परवाह नहीं की, आखिर उनके इकलौते बेटे की शादी जो थी। उन दिनों बारातें दो तीन दिन ठहरती थी। खूब ख़ातिरदारी और हँसी ठिठोली चलती थी।

शादी हो गई, मम्मी जी सूरतगढ़ आ गए। पापा जी को अपनी पढ़ाई पूरी करनी थी, लेकिन शायद कोई एडमिशन की मज़बूरी चल रही थी।

पापा जी ने सोचा कि चलो तब तक कोई काम ही किया जाए। इत्तिफाक से उन्हे वहाँ के सिनेमाघर में नौकरी मिल गई। आगे का किस्सा बहुत मज़ेदार है। छोटा सा सिनेमाघर था। लोग भी कम ही होते थे, जो फिल्में देखते थे। पापा जी के जिम्मे सिनेमा का सारा काम ही था। पहले वे टिकट देते थे यानि कि बुकिंग क्लर्क जब मूवी चालू होने का समय होते तो टिकट कुलैकटर बन कर गेट पर खड़े होकर टिकटे इकट्ठी करते और फिर फिल्म चालू करवा देते। घर भी पास में ही था, जाकर मम्मी जी को ले आते और बाक्स (पुराने ज़माने में सिनेमाघरों में सिर्फ एक दो परिवारों या आठ दस लोगों के बैठने के लिए आरामदायक सोफे वाले छोटे कमरे) में बिठा देते। बीच बीच में आते जाते रहते। फिल्म समाप्त होने पर भी मम्मी जी वहीं बैठे रहते, क्योंकि उन्होंने मूवी शुरू से तो देखी नहीं होती थी। अगले शो के लिए फिर से पापा अपने काम पर लग जाते और मूवी की शुरूआत देख कर मम्मी जी घर वापिस आ जाते। वो ज़माना था, दलीपकुमार, देवानंद, सुरैया और मधुबाला जैसे सितारों का। हर तीसरे चौथे दिन फ़िल्म बदलती थी और वैसा ही प्रोग्राम चालू रहता। पापा को फ़िल्में देखने का बहुत शौक़ हो गया था। बाद में अबोहर में भी हम सब काफ़ी फिल्में देखते थे। मम्मी जी तो घर के कामों के कारण कम ही देखते थे, लेकिन  मैनें तो बहुत ज़्यादा देखी होंगी। अबोहर के संदीप सिनेमा में लगने वाली लगभग 90 परसैंट मूवीज़ मैं देख ही लेती थी। हमारे घर का माहौल उस ज़माने के हिसाब से काफ़ी खुला था। थोड़े से समय की मौज मस्ती के बाद पापा जी की पढ़ाई गंगानगर में फिर से छठी क्लास से शुरू हो गई। बाहर कमरा लेकर रहते थे और मम्मी जी के मामा खज़ान चंद जी छाबड़ा उनके रूममेट थे। इसी तरह दसवीं पास हो गई और मम्मी जी के चाचा श्री सोहन लाल जी चुग ने उन्हें तुरंत बैंक में लगवा दिया। उन दिनों नौकरियाँ आसानी से मिलती थीं, पढ़े-लिखे लोग मुश्किल से मिलते थे। दसवीं पास करना उन दिनों बहुत बड़ी बात थी। पापा जी ने बाद में भी प्राईवेट पढ़ाई चालू रखी और प्रभाकर कर ली थी। ग्रैजुएशन करने की कोशिश तो की, लेकिन पारिवारिक ज़िम्मेदारियों के चलते वह इच्छा पूरी न हो सकी। इसी बीच

सरकार की ओर से ज़मीनें अलाट हो गई थीं और हमें रामसिंह पुर के पास कुछ ज़मीन मिली थी। हमारे परिवार की यह बदक़िस्मती थी शायद शिक्षा की कमी के कारण ढंग से काग़ज़ी कार्रवाई पूरी नहीं कर सके, और दूसरा रिश्तेदारी भी इसी एरिया में थी, जो ज़मीनें मिली वो बंजर समान ही थी। पानी की कमी भी थी। मतलब कि पाकिस्तान की जायदाद के मुक़ाबले कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा। कुछ साल पहले जब पापा ने अपनी ज़मीन बेची तो भी बहुत कम क़ीमत मिली थी। शायद अब कुछ क़ीमतें बढ़ गई हैं। मैं ऐसे कई लोगों से मिली हूँ जिन्होंने पंजाब दिल्ली में क्लेम लिए और जितना पाकिस्तान में छोड़ कर आए थे, उससे कहीं जयादा ही पाया। चलो मिलता वही है, जो मुक़द्दर में लिखा होता है। लेकिन प्रभु की अपार दया है कि बाद में धीरे-धीरे सब ठीक होता गया। दादा जी ने मकान के लिए भी रामसिंह पुर में बंदोबस्त कर लिया था। पापा जी तो नौकरी करने फाज़िल्का चले गए थे। मम्मी जी और मैं भी साथ थे, और तनख्वाह थी अस्सी रुपए। उस ज़माने के हिसाब से ठीक तनख्वाह थी। मकान का किराया और बाक़ी खर्चे निकाल कर भी कुछ बचत हो जाती थी। आजकल की पीढ़ी के लिए तो यह सुनना भी अजूबा लगता होगा। पाकिस्तान में दादी जी बताती थी कि सोने का भाव बीस रूपए तोला था। दो अढ़ाई सौ रूपए तोले का तो मुझे भी याद है। मेरी शादी में यानि कि 1976 में 650 रूपए तोला था। बाद में जितनी तनख्वाह बढ़ी महँगाई कहीं ज्यादा बढ़ी। जल्दी पापा की ट्रांस्फ़र मलोट हो गई और कुछ समय पश्चात अबोहर हो गई। मेरा फाज़िलका में पहली जमात में दाखिला हुआ और दूसरी क्लास मैनें अबोहर के सनातन धर्म स्कूल जो कि पुराने शहर में गली नं. दो या तीन में था। पाँचवी तक था वो स्कूल। हमारा घर भी पास में ही गली नं. पाँच में था । कुछ समय बाद उसी गली में मकान बदल कर रहे थे। मुझे अच्छे से याद है पहले मकान मालिक जुनेजा थे और दूसरे छाबड़ा थे। मेरी बहन रेनूका( बबल) का जन्म तब हुआ, जब हम पहले वाले मकान में रहते थे। रेनूका का जन्म ननिहाल में यानि कि अनूपगढ़ में हुआ है। जो मुझ से सात साल छोटी है। मेरे से दो साल बाद एक भाई का जन्म रामसिंह पुर में भी हुआ

था लेकिन उसका हमारे परिवार का साथ दो चार दिन का ही था। वो प्रभु को प्यारा हो गया। जब मैं पाँचवी में पढ़ती थी, तब हमारा जैन नगरी वाला घर बन गया था। राजन का जन्म उसी घर में हुआ है। बबीता और मोंटी का जन्म भी उसी घर में हुआ है। बबीता से पहले और बाद में हमारी दो बहने पैदा हुई थीं, लेकिन वे भी एक दो दिन का जीवन ही लेकर आई थीं।

मैं यह बात बहुत ही फ़ख्र से कह सकती हूँ कि हमारे घर में कभी भी किसी भी बात पर किसी ने लड़के लड़की में कोई फ़र्क़ नहीं किया, और न ही हमारे घर में कोई ज्यादा रोक टोक थी। बबीता का जन्म हुआ तो पूरे मुहल्ले में देसी घी का हलवा बांटा गया था। पापा जी को पढ़ाई का बहुत शौक़ था, लेकिन उस ज़माने में आज की तरह नम्बर लेने की मारा मारी नहीं थी और न ही माता-पिता बच्चों की पढ़ाई पर आजकल की तरह ज़ोर देते थे। सिर्फ़ मेरी पढ़ाई ही लकड़ी की तख्ती, स्लेट और सरकारी हाई स्कूल में हुई है। बाद में तो माडल स्कूलों का चलन हो गया था। उस समय लोगों में प्यार अपनत्व काफ़ी होता था। एक दूसरे के दु:ख सुख में शामिल होते थे। एक दूसरे के घरों में सब्ज़ियों का लेन देन , मिल बाँट कर खाना, त्यौहारो में मिलना जुलना ज़िन्दगी का अहम हिस्सा था। जैन नगरी में आज भी हमारा उनसे मेल जोल है। जैन नगरी वाला मकान बेचे भी कितने साल हो गए हैं लेकिन जब भी हमारे घर से कोई जाता है तो जैन नगरी ज़रूर हो कर आता है। हम सभी बहन भाइयों का बचपन वही बीता है, और मेरी तो शादी भी उसी घर में हुई थी। मेरी सबसे छोटी मासी सुमिता की शादी अबोहर में हुई और अब उसकी बेटी मीतू तो जैननगरी में हमारी गली में ही रहती है, जो कि बहुत ही खुशी की बात है। मेरी ससुराल के भी काफ़ी लोग पहले अबोहर में ही थे, लेकिन अब कुछ वहीं पर हैं और कुछ चंडीगढ़ और कुछ अपने कारोबार वाले शहरों में चले गए हैं।

मेरी खुशकिस्मती है कि उस ज़माने में मुझे पढ़ने और नौकरी करने की इजाज़त मिली, वरना तब लड़कियाँ आठवीं , दसवीं मुश्किल से कर पाती थीं, और शादियाँ भी जल्दी कर दी जाती थीं। उस समय जैन नगरी

में हम तीन चार लड़कियों ने ही बी.ए. बीएड. किया था। मेरे अलावा मेरी सहेली कमला धूड़िया जिसकी शादी अबोहर में हुई है, ने सरकारी नौकरी की। सरोज मुंजाल (मिढ्ढा) की शादी सिरसा में हुई, उसने भी नौकरी की। एक मेरी सहेली चंचल कालड़ा वर्मा ने अबोहर में प्राइवेट स्कूल में नौकरी की। मतलब पढ़ाई का चलन भी कम था और नौकरी का उससे कम। जो लड़कियाँ नौकरी करती थी, ज्यादातर टीचिंग में ही करती थी। मैं अपने माता-पिता को बार बार नमन करती हूँ, जिन्होंने मुझे पढ़ाई और नौकरी करने के इतने अच्छे अवसर प्रदान किए। मैं कोई बहुत बड़ी अफ़सर नहीं बनी, लेकिन मैंने बहुत कुछ प्राप्त किया है। बी. एड. के रिज़ल्ट से पहले ही मैंने कुछ दिन स्कूल में नौकरी की। एक साल तक अबोहर के ही प्राइवेट स्कूलों में डेढ़ दो सौ रूपए महीने की नौकरी करने के बाद मुझे सरकारी हाई स्कूल पंजकोसी में नौकरी मिली। सवर्षा कुकड़ चुग ने, जो कि अबोहर से प्रिंसिपल के पद से रिटायर हुई हैं, नौकरी में मुझे बहुत अच्छे से गाइड भी किया और मेरी मदद भी की। मैं उनकी आभारी हूं, वो मेरी मासी सुमिता की ननद है। हालांकि पंजकोसी गांव अबोहर से ज्यादा दूर नहीं है, लेकिन उन दिनों आवागमन के साधन इतने विकसित नहीं थे। रोज़ आना जाना संभव नहीं था, इसीलिए वहीं पर रहना पड़ता था । चौधरी बलराम जाखड़ जो कि लोकसभा के स्पीकर रहे हैं, यह उनका गाँव है। स्कूल की बिल्डिंग काफ़ी बड़ी थी, गर्ल्स स्कूल होने के कारण अधिकतर लेडी स्टाफ़ था। स्कूल में ही रहने का प्रबंध था। कोई मुश्किल नहीं थी। मिसिज़ जाखड़ अकसर हमारे साथ आकर ताश खेलती थी इसी दौरान 1976में मेरी शादी हुई और 1977 में मेरे बड़े बेटे समीर का जन्म तो चंडीगढ़ में हुआ, लेकिन मेरी पोस्टिंग वहीं पर थी। समीर के पालनपोषण में मदद के लिए पापा से परमिशन लेकर मैं अपनी छोटी बहन बबीता को साथ ले गई और आठवीं क्लास उसने वहीं पर रह कर बहुत अच्छे अंकों में पास की। उससे पहले मेरी बहन रेनूका ने भी दसवीं जमात मेरे साथ रह कर पंजकोसी से ही पास की थी। चंडीगढ़ के पास ट्रांस्फर की हम बहुत कोशिश कर रहे थे, लेकिन यह काम इतना आसान नहीं था। 1979 में

छोटे बेटे पंकज के जन्म के दो महीने बाद बहुत भागदौड़ करके मेरे देवर शशीकांत ने मेरी बदली करवाई, जो कि रोपड़ के पास हुई, यानि कि चंडीगढ़ से चालीस किलोमीटर दूर। लेकिन हम सभी बहुत खुश थे। रोज़ आना जाना हो जाता था। शशीकांत की भी मैं सदा आभारी रहूँगी क्योंकि ट्रांस्फर का काम बहुत ही मुश्किल था। दो साल बाद तो मैंने चडींगढ़ के पास यानि सिर्फ़ सात किलोमीटर की दूरी पर ही बदली करवा ली। कुछ समय बाद तो स्कूटर जाने में सिर्फ़ पन्द्रह बीस मिनट ही लगते थे। यानि इतनी मुश्किलों के बाद ज़िंदगी थोड़ी आसान हुई थी। क्यूँकि मैं और मेरे पति दोनों ही सबसे बड़े थे, दोनों पक्ष के छोटे भाई बहनों की शादियां बाद में हुईं और परमात्मा की अपार कृपा से 1984 में मैं अपने घर में रहने आ गई थी। इससे पहले हमारे पास सरकारी आवास था। इत्तिफाक कुछ ऐसा हुआ कि हम सभी बहन भाइयों की शादियाँ अलग अलग शहरों में हुईं। मेरी शादी के बाद पापा ने प्रमोशन ले ली, जबकि पहले वो ट्रांस्फर के कारण लें नही रहे थे। पापा की पहली ट्रांसफर करनपुर हुई, फिर लुधियाना जहाँ रेनूका की शादी हुई, फिर मंडी डबवाली , यहाँ राजन की शादी हुई, फिर अंबाला, यहाँ पर बबीता की शादी हुई और आखिर में दिल्ली आ पहुँचे और यहाँ पर आकाश की शादी सम्पन्न हुई। पापा की बदली एक बार दिल्ली पहले भी हो रही थी, लेकिन उन्हे दिल्ली आना पंसद नहीं था, लेकिन बाद में जब एक बार आए तो वहीं के होकर रह गए। अबोहर वाला मकान, और गाँव की ज़मीन बेचकर सबने मिलजुल कर द्वारका और ज़ीरकपुर में सिर पर छत का प्रबंध कर लिया यानि अपने घर बन गए।

**मम्मी -पापा जी के बारे में:-** वैसे तो हर किसी को अपने माता-पिता सबसे अच्छे लगते हैं, लेकिन हमारे माँ पापा की शख्सीयत भी बहुत उँची थी। पापा बहुत ही मेहनती, जीवन के अन्तिम समय तक वो काम करते रहे। अच्छे संस्कार और पढ़ाई के शौक़ीन। हर क़दम पर बच्चों का साथ दिया, उनका हौसला बढ़ाया। माँ बाप की सेवा में कभी कोताही नहीं की। दादी जी अंबाला में और दादा जी दिल्ली में प्रभु चरणों में समाए। दोनों के अन्तिम कार्य पूरी श्रद्धा भक्ति लगन से किए। इकलौती

संतान होने का पूरा फ़र्ज़ निभाया। मैनें कभी भी उन्हें अपने माता-पिता से उँची आवाज़ में बात करते नहीं सुना। सभी दोस्तों रिश्तेदारों से उनके संबंध बहुत ही अच्छे, मेल-मिलाप वाले रहें। क्यूँकि ममी जी अपने आठ बहन भाइयों में सबसे बड़ी थीं, और नानी जी की मृत्यु बहुत पहले हो गई थी, इससे उनकी ज़िम्मेवारी और भी बढ़ गई थी, मम्मी जी और सभी भाई बहनों का प्यार एक मिसाल है। पापा जी को सबसे मिलने जुलने का, खाने का, खिलाने का, बहुत शौक़ था, कोई भी घर में आ जाए, सबका स्वागत खुले दिल से करना। और मम्मी जी भी बहुत मेहनती। भक्ति भाव और भगवान में पूर्ण आस्था। आनन्दपुर वाले गुरू जी में अटूट विश्वास। अकसर कुटिया जाना, उनकी दिनचर्या में शामिल। बढ़िया खाना बनाना और घूमने फिरने का शौक़। सलीक़े से पहनना ओढ़ना। हर चीज़ साफ़ सफाई से रखना। जो कपड़े नहीं पहनने होते थे, उन्हे तुरंत ज़रूरत मंदो को दे देते थे।पहले ज़माने में लोगों के पास आजकल की तरह कपड़ो के ढेर नहीं हुआ करते थे, लेकिन मैनें देखा कि तब भी मम्मी जी हमेशा सजे संवरे होते थे। मम्मी जी के स्वभाव में थोड़ी तेज़ी थी, लेकिन मन के पूरे साफ़। साफ़ बात कहना, लेकिन चुगली नहीं करनी। सभी बहुत मान आदर देते थे। मम्मी-पापा का जीवन अच्छा रहा, सिर्फ़ अन्तिम दस महीने पापा ने और पन्द्रह महीने मम्मी जी ने काफ़ी शारीरिक कष्ट भोगा। इस दौरान बच्चों ने बहुत सेवा की। पापा के स्वर्गवास के बाद उन्होंने अपने आप को संभाल कर परिवार के प्रति अपने दायित्व अच्छे से पूरे किए। हम सभी बहन भाइयों और हमारे परिवारों के इलावा, उनके अपने भाई बहन, उनके परिवार तथा बाक़ी रिश्तेदार और जो कोई भी उनको जानता है कभी भी जीते जी उन्हे भूल नहीं पायेंगे। भगवान उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें। हम बच्चों की भूल चूक माफ़ करें और अपनी दया दृष्टि हम पर बनाएँ रखें, हम सभी की यही प्रार्थना है।

**चुग परिवार और अनूपगढ़ ,रामसिंहपुर की कुछ यादें :-** अगर मैं चुग परिवार यानि अपने ननिहाल की विशेष चर्चा न करूँ तो मेरी किताब अधूरी है। मैं यह बात सिर्फ़ लिखने के लिए नहीं लिख रही, लेकिन वास्तविकता बयान कर रही हूँ । मैं यह नहीं कहती कि आजकल

लोगों में प्यार नहीं, लेकिन इतना ज़रूर कहूँगी कि वो बात कहाँ! इस परिवार में और कुछ उस ज़माने में कुछ तो अलग सा था और आज भी है, जो उन्हे मेरी नज़र में औरों से अलग करता है। सिर्फ़ मैं ही नहीं मेरे भाई बहनों के इलावा मेरे कज़नस भी मेरी इस बात से सहमत होंगें। आज कल के ज़माने में सगे भाई-बहन भी एक दूसरे के घरों में इतनी आत्मीयता और हक़ से नहीं जाते होंगे जितना हमारे परिवार में हमारा मामे और मासियों के घरों में आना जाना है। यह ठीक है कि बदलते समय के साथ आने वाली पीढ़ी व्यस्त हो गई है, लेकिन प्यार सत्कार की भावना में कोई कमी नहीं है। जब भी शादी ब्याह या कोई और पारिवारिक उत्सव होता है तो सभी पहुँचने कि कोशिश करते हैं। चाहे परिवार के दामाद हों या बहुएँ, सभी अत्यंत मिलनसार हैं। अच्छा माहौल किसे अच्छा नहीं लगता। परिवार में शामिल होने वाला नया सदस्य भी उसी रंग में रंग जाता है। ये सब अच्छे संस्कारों और अच्छे माहौल की देन हैं।

जैसे कि मैनें पहले बताया मेरी माता जी अपने आठ भाई बहनों में सबसे बड़ी थी। चार भाई और चार बहनों का भरा पूरा परिवार, और दूसरी तरफ़ मेरे पिता जी अपने परिवार में इकलौते थे। अपने नानके परिवार से इतना प्यार और सहयोग मिला कि कोई कमी लगी ही नहीं। किताब के इस भाग में पारिवारिक चर्चा के इलावा मैं उस ज़माने की कुछ ऐसी परम्पराओं और बातों की चर्चा करूँगी जिसके बारे में आजकल की पीढ़ी नहीं जानती, और पढ़ कर शायद उन्हें अच्छा लगे। जब मम्मी जी की शादी हुई तो कृष्णा और शीला मासी के इलावा जयलाल मामा जी ही थे। अमर मामा जी ,शिवदयाल और राजिंदर मामा और सुमित्रा मासी का जन्म बाद में हुआ। शिव, राजिंदर और सुमित्रा जी तीनों मुझ से छोटे हैं। कृष्णा मासी और जयलाल मामा जी के लिए मेरे मन में मासी मामा का स्थान है, जबकि शीला मासी और अमर मामा जी को मैंनें बड़े बहन भाई समझा और शिव, राजिंदर और सुमित्रा जी को तो मैनें छोटे बड़े दोनों ही समझा। बड़े इसीलिए क्योंकि रिश्ता तो बड़ा ही है, और छोटे इसीलिए क्यूँकि उम्र में तीनों ही मुझसे छोटे हैं। उस ज़माने

में ऐसा ही चलता था । मेरी मम्मी के दो मामा स्वर्गीय किशन सिंह जी छाबड़ा और स्वर्गीय खज़ान चंद जी छाबड़ा भी ममी जी से छोटे थे और उन दोनों की शादियों की कुछ कुछ यादें मेरे ज़हन में भी हैं। छाबड़ा परिवार का ज़िक्र करना भी अत्यंत ज़रूरी है, जो कि मैं आगे करूँगी।

उन दिनों लोग आजकल की तरह घूमने फिरने नहीं जाया करते थे। स्कूलों में बच्चों की छुट्टियों में रिश्तेदारों के पास ही घूमना होता था। हम सभी स्कूल की पहली छुट्टी के दिन ही अनूपगढ़ और रामसिंहपुर चले जाते थे, लेकिन वहाँ जाना भी आज जितना आसान नहीं था। इस रूट पर बस का सफ़र बहुत कम था। अबोहर से गंगानगर के लिए सीधी बस नहीं थी इसलिए पहले हम शाम को लगभग चार पाँच बजे ट्रेन से हिन्दूमलकोट जाकर गंगानगर के लिए बस पकड़ते और वहाँ से ट्रेन लेकर रात को शायद बारह बजे सरूपसर पहुँचते। गाड़ी वहीं तक ही होती थी। वहाँ पर एक दो ढाबे होते थे, जहाँ से किराए पर चारपाइयाँ लेकर सो जाते थे। कई बार ज़मीन पर ही कुछ बिछाकर सो जाते। सुबह पाँच छः बजे अगली गाड़ी आती और हम लोग नौ बजे के क़रीब रामसिंह पुर पहुँचते और बाद में कुछ दिन रहकर उसी गाड़ी से अनूपगढ़ जाते। क्यूँकि अनूपगढ़ भारत का आख़री स्टेशन है, इसके बाद पाकिस्तान की सीमा शुरू हो जाती है, इसलिए गाड़ी वहीं से ही वापिस हो जाती है। पहले इस इलाके में सिर्फ़ यही एक गाड़ी आती थी, काफ़ी समय बाद एक गाड़ी शाम को आनी शुरू हो गई थी। हमारा घर रामसिंह पुर स्टेशन के बिलकुल सामने था, घर बैठे ही आती जाती गाड़ियाँ दिखती थी, हम बच्चों को बड़ा अच्छा लगता था। गाड़ी आने पर पुरुष ऐसे ही स्टेशन का चक्कर लगा आते, अक्सर लोग एक दूसरे को जानते थे, मिलना मिलाना भी हो जाता और अगर किसी ने यहाँ वहाँ कोई सामान भेजना होता तो वो भी भेज देते। गाड़ी रामसिंहपुर स्टेशन पर काफ़ी देर रुकती थी,अगर कोई भी रिश्तेदार अनूपगढ़ से गाड़ी में रामसिंहपुर से निकलता और मेरी दादी को पता चल जाता तो वो उन सब के लिए चाय बनाकर पीतल के बर्तन में स्टेशन लेकर जाती,घर का बना खाने पीने का समान, प्यारे सगे सम्बनधियों का साथ,हँसी मज़ाक़,और रेल गाड़ी में चाय पीना, पिकनिक

मनाने जैसा ही लगता था।और तो और जब कभी हमारा परिवार रामसिंहपुर जाता तो मेरी दादी ड्राई फ्रूट का हार बना कर रेलवे कर्मचारी को कह कर रेल के इंजन के अगले हिस्से पर डलवाती, क्योंकि ये इंजन ही वो गाड़ी लेकर आया, जिसमें उसके बच्चे बैठ कर आए। इंतहा थी प्यार की। रेलवे वाले भी खूब हँसते, और दादा जी से पूछते रहते कि आपके बच्चे कब आ रहे हैं ? ताकि उन्हे खाने को ड्राई फरूट मिले। मेरे ननिहाल के परिवार को दादी जी अपना ही परिवार मानती थी।

हमारे घर में एक बेरी का पेड़ था, जिसके बेर अत्यंत मीठे थे। दादी सभी को वो मीठे बेर बाटंती थी। दादी जी को लोग बेरी वाली अम्माँ भी कहते थे। हम लोग ताज़े बेरों के मौसम में कम ही जा पाते थे, इसलिए हमारे लिए सूखे बेर आते थे, जो कि अत्यंत स्वादिष्ट होते थे। इसके इलावा होलां ( हरे चने के बूटे को थोड़ा सा सूखा कर, जला कर बनाई जाती हैं)भी दादी जी हमें भेजते थे। नानी जी भी हमें मरूंडे( कनक, चने, चावल,आदि में गुड़ डालकर बनते है) गन्ने, पीलू (एक प्रकार का फल) खुब्बा, फोगला, सांगरी, काचरी,के अलावा कई चीज़ें घर में बना, सुखा कर भेजते थे। खोया तो अक्सर ही आता था। हम बच्चे शाम को ऐसी चीज़ें ही जेबों में भर कर सनैक्स के रूप में खाते थे। नहीं तो चने, गेहूँ भट्टी से भुनवा कर गुड़ के साथ, कभी नमक मिर्च और घी डालकर या वैसे ही खाते थे। उन दिनों घरों में एक ही सब्ज़ी-दाल बनती थी और सब लोग वही खाते थे। आजकल तो लगभग सबके लिए अलग अलग नाश्ता, सब्ज़ियां बनती हैं , कोई ये नहीं खाता तो कोई वो नहीं खाता, लेकिन पहले ऐसा नहीं होता था। आज की तरह गिन कर रोटियाँ नहीं बनती थीं। बासी समान रखने के लिए फ्रिज नहीं होते थे। सुबह शाम ताज़ा आटा गूँथना , तवे या तंदूर पर रोटियाँ बनानी। इसी तरह ताज़ा मसाला कुंडी में बना कर चूल्हे पर सब्ज़ी बनती थी। घर में चूल्हा जलता ही रहता था। कभी आग का कोई काम नहीं भी होता , तो भी बुझती हुई आग में कुछ उपले डाल दिए जाते, ताकि आग जलती रहे। क्यूँकि नए सिरे से आग जलाने में थोड़ी मुश्किल आती थी। नानी के घर के सामने एक घर था।जब नानी सवेरे आग जलाती तो सामने वाले घर से

एक औरत, जिनसे कुछ रिश्तेदारी भी थी, बड़ा सा लोहे का कड़छा लेकर आग माँगने आ जाती थी, और जलते हुए चूल्हे में कड़छा डालकर आग निकालकर ले जाती। जिससे हमारे घर में जलने वाला चूल्हा धीमा पड़ जाता था, लेकिन कुछ समय बाद सामान्य हो जाता था। मुझे ये बात बहुत बुरी और अजीब भी लगती, हम लोग अबोहर में रहते थे, जिसकी गिनती शहरों में होती थी, और वहाँ ऐसा चलन नहीं था। मैने नानी को कहना कि आप उसे मना क्यों नहीं करते, लेकिन नानी हंस कर टाल जाती और कहती  कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। नानी के घर के साथ वाला घर मम्मी के दादा के भाई का घर था, जहाँ पर उनके तीन बेटे रहते थे। बीच की दीवार बहुत छोटी सी थी, साथ में सीढ़ी थी। अगर आपस में कोई बात करनी होती तो सीढ़ियों पर खड़े होकर बातें हो जाती थीं। नाना जी के पिता जी आपस में तीन भाई थे। एक भाई की मौत बहुत पहले हो गई थी, लेकिन तब उनकी शादी हो चुकी थी। उनकी पत्नी जिसे सभी सैयां अम्माँ  कहते थे। उस औरत की सारी ज़िन्दगी विधवा के रूप में ही गुज़री, जबकि मैनें सुना था कि उन्हें अपने पति की शक्ल तक भी अच्छे से याद नहीं। उन दिनों औरतों की दूसरी शादी का चलन नहीं था वो मेरे नाना जी के भाई सोहन लाल चुग जी को ही अपना बेटा मानती थी,जिनका परिवार जयपुर में है। सोहन लाल चुग जी बहुत बड़ी शख्सीयत के मालिक थे । चुग परिवार के पहले पढ़े लिखे, बैंक से आफिसर पद से रिटायर और परिवार में सबसे पहले जयपुर में सैटल होने वाले चुम्बकीय व्यक्तित्व के मालिक थे। जिन सामाजिक बुराइयों के बारे में आज किताबों में पढ़ने को मिलता है, वे उस समय आम थी। हमारे ही परिवार में लड़कियों की छोटी उम्र में शादी होना, विधवा विवाह न होना, बहुपत्नी प्रथा , लड़की की शादी बहुत बड़ी उम्र के आदमी, जिसके बच्चे भी उससे बड़ी उम्र के होते, उससे होना, वट्टे की शादी यानि जिस घर में बेटी देना, उसी घर की बेटी लेना, जैसी कुरीतियाँ भी थीं। लेकिन तलाक़ नहीं होते थे, और आज भी प्रभु किरपा से नाम मात्र ही हैं, लेकिन अब ये चलन कुछ शुरू हो चुका है। लेकिन इसमें मैं बुराई नहीं समझती। अगर किसी भी तरह आपस

में न निभे तो सारी उम्र लड़ाई झगड़े में बिताने से तो अलग हो जाना ही बेहतर है।

उन दिनों गाँवों के मकान अक्सर कच्चे ही हुआ करते थे। मिट्टी में गोबर मिला कर घर की औरतें फर्श की लिपाई करती थीं। किसी उत्सव पर या फिर दीवाली पर सारे घर की, छतों की अच्छे से लिपाई होती थी। फर्श से थोड़ी ऊंचाई तक सफेद चिकनी मिट्टी का घोल लगा कर उस पर कई रंगों के बेल बूटे बनाए जाते, जो कि अत्यंत आकर्षक लगते थे। घरों में पीतल के और मिट्टी के बर्तनों के इलावा काँसे , ताबें और लोहे के बर्तन भी होते थे जिन्हें खूब चमका कर रखा जाता था। तब तक हमारे गाँवों में बिजली नहीं आई थी और न ही घरों में वाटर वर्कस के पानी की सप्लाई थी। घर की औरतें मिट्टी के घड़ों में कुएँ , तालाबों , पोखरों से पानी भर कर सिर पर ढोती थी। मुझे याद है जब मेरी मम्मी मासियां या घर की और औरतें पानी भरने जातीं तो कई बार मैं भी कोई छोटा बर्तन लेकर उनके साथ चल देती। सुबह शाम नियमित रूप से पानी भरने का नियम था।पीने नहाने बर्तन धोने जैसे ज़रूरी काम निपटाने के लिए सुबह शाम औरतों के कई कई चक्कर पानी लाने के लिए लगते थे। कपड़े धोने का काम पोखरों के पास जाकर होता था। रामसिंहपुर में हमारे घर के सामने थोड़ी दूरी पर स्टेशन के साथ नहर थी। सारे गाँव वाले वहीं से पानी लेते थे। मुझे नहर पर जाना बड़ा अच्छा लगता था। दादी जी के साथ कई बार कपड़े धोने या बर्तन साफ़ करने नहर पर ही चले जाते थे। वहीं पर काम करके नहा कर आते आते थोड़ा पानी भी भर कर ले आते थे। कितने काम एक साथ हो जाते थे और जब पानी भरने जाते तो रास्ते में आते जाते गप्पें मारने का आनंद अलग से आता था। कुएँ से पानी खींचना, सिर पर रखना, एक हाथ में छोटी पानी की बालटी पकड़ना, कई औरतें तो मटके के उपर मिट्टी या पीतल का एक छोटा बर्तन भर कर रख लेती थीं। तभी तो उनको अलग से कभी व्यायाम या सैर की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। नित्य कर्म से निपटना भी घर से बाहर होता था। घरों में शौचालय का चलन नहीं था। औरतों के नहाने के लिए छोटी सी कामचलाऊ जगह बनी होती थी। मर्द लोग

तो खुले में ही स्नान करते थे। आजकल हमारे बाथरूम ड्राईंग रूम से ज़्यादा सुंदर और सुविधायुक्त बनाए जाते हैं। आजकल की पीढ़ी के लिए तो ये कल्पना करना भी मुश्किल है कि उनके बाप दादा ने बिना पानी (आज की तरह) बिजली, शौचालय, कच्चे घरों वाला जीवन ख़ुशी ख़ुशी जीया है। एक और रिवाज़ का मैं ज़िक्र करना चाहूँगी, वह यह कि मम्मी की शादी के बाद थोड़ा समाज में बदलाव आना शुरू हो गया था, जैसे कि लड़कियों की शादी की उम्र थोड़ी बढ़ गई थी। हमारे घरों में अब शादी अठारह के बाद होती थी, लेकिन रिश्ते अब भी घर के बड़े ही तय करते थे और देखा दिखाई की रस्में नहीं होती थी। कोई चोरी छुपे ही देखता था। मँगनी के बाद लड़की ससुराल पक्ष के किसी भी रिश्तेदार के सामने नहीं आती थी। अगर कोई घर में आता तो लड़कियाँ किसी कमरे में छुप जाती थीं और जब तक वो चले न जाते बाहर नहीं निकलती थीं। शादी की सारी रस्में लम्बे घूँघट में होती थीं और बाद में भी घर के बड़े बुज़ुर्गों के सामने घूँघट में ही आती थीं और उनसें बात भी नहीं करती थीं। मेरी मम्मी ने सारी उम्र मेरे दादा जी से परदा किया था। दोनों पोत बहूओं को इस रस्म से छूट मिल गई थी, लेकिन मम्मी जी हमेशा घूँघट निकालती थी।

जैसा कि शायद मैनें पहले बताया कि नाना जी तीन भाई थे, एक मेरे नाना जी बालकिशन दास जी चुग, दूसरे सोहनलाल जी चुग और तीसरे बिहारी लाल जी चुग। बिहारी लाल जी आजकल जयपुर में रहते हैं। नाना जी की दो बहनों में एक का तो बहुत पहले स्वर्गवास हो गया था, जिनके बेटे प्रकाश जसूजा जी थे। जसूजा जी जिनका स्वर्गवास कुछ समय पहले ही हुआ है, जो कि मम्मी जी की बुआ के और पापा जी के मामा के बेटे थे, उनकी शख्सीयत भी बेमिसाल थी। बीमा कंपनी में उच्चाधिकारी पद पर थे। आजकल उनका परिवार जयपुर में सैटल है, पहले वे गंगानगर रहा करते थे तो अक्सर काम के सिलसिले में वे जब भी अबोहर आते तो हमारे घर ज़रूर आते। परिवार में वे पहले शख्स थे जिनके पास उस ज़माने में मोटरसाइकिल थी। हमारे घर में सब उन्हे फटफटी वाले मामा जी कहते और उनकी बाईक पर राईड ज़रूर लेते।

उनका हमारे परिवार से काफ़ी स्नेह था । वो मेरे सुभाष जीजा के फूफा जी भी थे। हमारे परिवारों में ये बहुत बड़ी ख़ासियत है कि रिश्ते भले दूर हो गए हैं, लेकिन मेलजोल आज भी क़ायम है। काफ़ी लोग अब जयपुर में सैटल हो गए हैं और सभी का मेलमिलाप बरक़रार है। मैं भगवान से दुआ माँगती हूँ कि सब ऐसे ही मिलते रहें। मेलमिलाप का एक कारण और भी है और वह यह कि आगे से आगे रिश्तेदारियों में शादियाँ हो रही हैं, जो कि बड़ी अच्छी बात है। देखे भाले ख़ानदान होने से चिन्ता कम रहती है। नाना जी की दूसरी बहन लज्जा देवी का ज़िक्र पहले हो चुका है, जो कि मम्मी जी की बुआ के साथ साथ जेठानी भी हैं, यानि कि पापा जी के ताया जी की बहू। उनका सारा परिवार भी जयपुर में सैटल है। डबल रिश्ता होने के कारण इस परिवार से हमारे परिवार का बहुत मेलजोल है। वैसे तो पापा जी इकलौते थे, लेकिन गिरधारी लाल ताया जी से बड़े सगे भाई वाला स्नेह था। इसके इलावा भगवान दास चाचाजी जो कि गिरधारी लाल जी के भाई है, उनसे कुछ मेलजोल रहा। पापा जी के कज़न तो और भी हैं, लेकिन कामों में व्यस्तता के चलते उनसे मुलाक़ात कम ही हुई है।

नाना जी के छोटे भाई बिहारी लाल जी और मेरे नाना जी यानि कि दोनों भाई अनूपगढ़ में एक ही घर में रहते थे। मैनें देखा कि चूल्हे ज़रूर अलग थे, लेकिन आंगन साँझा था। बीच में दीवार नहीं थी। उन दिनों मम्मी जी के दादी जी भी जीवित थे। जब उनकी मृत्यु हुई तब मैं बी.एड. कर रही थी। मुझे उनके बारे में भी सब याद है। अति सुंदर और प्रभावशाली महिला थी। मेरे नानी जी की मृत्यु उनसे कुछ साल पहले हो गई थी। नानी जी की असामयिक मृत्यु से परिवार को बहुत गहरी चोट लगी थी। नानी जी की मृत्यु से पहले शीला मासी जी की शादी ही हुई थी। जबकि बाक़ी चारों की शादियाँ बाद में ही हुई थीं। लेकिन ये दु:खभरा समय भी सबने मिलजुल कर काटा, जिसमें कि मम्मी जी के ननिहाल यानि कि छाबड़ा परिवार का बहुत सहयोग रहा, जिसका ज़िक्र मैं बाद में करूँगी।

जब हम ननिहाल जाते थे तो बड़ा आनंद आता था। जैसा कि मैनें बताया मेरे नाना जी का उनके भाई बिहारी लाल जी का आंगन सांझा

ही था। दोनों तरफ़ चूल्हे जले होते और दोनों नानियाँ यानि की मेरी नानी परमेश्वरी देवी और चाची नानी बागा देवी खाना वा चाय इत्यादि बना रही होतीं। उन दिनों परौठें बनाने का रिवाज़ नहीं था। सुबह ख़ूब सारी चाय बनती थी और जिसका जी चाहे रात की बची रोटियाँ दाल के साथ या नमक मिर्च या आचार के साथ खा ले। लगभग ग्यारह बजे सुबह सब्ज़ी रोटी बन जाती थी, और फिर क्योंकि बिजली नहीं होती थी, इसलिए रात का खाना भी ज्यादातर अंधेरा होने से पहले ही खा लिया जाता था। मुझे आज भी याद है, एक तरफ़ चूल्हे के पास बोरियाँ बिछा कर सेवा सिंह ,कर्मचन्द, सुभाष , मनोहर लाल, और अंग्रेज़(नरेश),तथा इनकी बहन जट्टी मासी बैठते और दूसरी तरफ़ हम सभी यानि कि शीला और सुमित्रा मासी और शिव और राजिंदर मामा जी। अमर मामा जी कभी कभी होते थे, क्यूँकि वो बड़े मामा जी यानि जयलाल जी के पास गंगानगर पढ़ते थे। और कभी कभी कुछ अच्छा बना होता तो मिलकर भी खा लेते थे। और बाक़ी सारा दिन खेल कूद में बीतता, क्यूँकि हम छुट्टियों में ही जाते थे, या फिर शादी ब्याह में। उन दिनों सादा खाना चलता था, जो भी बनता सब ख़ूब पेट भर कर खाते। कोई आज की तरह नखरे नहीं करता था, तभी तो सभी डेढ़ दो महीने इकट्ठे रह आते थे। बाद में हमारे परिवार के इलावा, कृष्णा और शीला मासी का परिवार भी आ जाता था। ज़रा सोचो कितने बच्चे इकट्ठे होते। एक औरत बच्चों को नहलाती, दूसरी पोंछ कर पाउडर डालती और तीसरी कपड़े पहनाती। झटपट काम हो जाता। अपना पराया कुछ लगता ही नहीं था। रात को मम्मी के मामा जी, उनके बेटे ज़रूर कोई न कोई मिलने आते और खाने का सामान भी लेकर आते और दिन में रिश्तेदार औरतें , लड़कियाँ आती रहती। उन दिनों आज की तरह कोई घर बंद नहीं करता था। घरों के बाहर कोई घंटी नहीं लगी होती थी। कोई अनजान चाहे कुंडी खटखटाये, जानकार तो वैसे ही आते जाते रहते। चारपाइयाँ बिछी रहतीं, वहीं सब बैठ जाते और बातें करते। हर समय चाय पीने का रिवाज़ भी नहीं था। कोई घर की बनी चीज़, या फिर दूध इत्यादि पी लेते थे। गन्नों और छलियों (मक्की) के मौसम में घरों में ये दोनों चीज़ें हमेशा खाने को मिलती थीं। शाम

को तक़रीबन हर रोज़ ही दाने (चने,गेहूँ) ताज़े भुनवा कर खाने का रिवाज़ था। दीवाली पर नानी और दादी गेहूं, चने, ज्वार और बाजरा भुनवा कर, उनमें गुड़ की चाशनी मिला कर मरूंडे (लड्डू की तरह) बना कर भेजती थीं, जो कि हम सभी शाम को बड़े चाव से खाते थे।

छुट्टियों में जब हम सभी अनूपगढ़ इकट्ठे होते तो जहाँ सब लड़के गली मुहल्ले में भागदौड़ करते या फिर नानाजी की दुकान के चक्कर लगाते, वहीं लड़कियाँ घर पर काम निपटा कर बातें करतीं और कुछ छोटी उम्र की, जैसे तब मैं , सुमित्रा मासी, और ममी की मामा की बेटी रेशमा और मेरी एक कज़न नंदी,तथा और भी कई लड़कियाँ दोपहर की गरमी में छत पर पड़ी चारपाइयों और बिस्तरों की सहायता से घर-घर खेलतीं, गुड्डे-गुड्डियों का ब्याह रचाते, हाथों से छोटे-छोटे कपड़े सिलते। कोई अहसास नहीं था गरमी का। रात को बिजली तो होती नहीं थी, इसलिए सब जल्दी बिस्तरों पर बैठ जाते। अगर मेहमान आए होते ख़ूब देर तक बातें चलती। उन दिनों की शादियाँ भी आज की तरह नहीं होती थीं। आजकल तो एक रात ही संगीत चलता है। तब एक महीना या पन्द्रह दिन पहले ही रोज़ रात को संगीत चलता था, जिसमें लोकल रिश्तेदारों और गाँव वालों को पक्का न्यौता दिया होता था। ढोलक की थाप पर औरतें देर रात तक गीत गाती थीं। लड़की की शादी पर पहले कुछ सुहाग के गीत और लड़के की शादी पर पहले कुछ घोड़ियाँ गाने के बाद लोकसंगीत गाए जाते थे। हर रोज़ प्रोग्राम समाप्त होने पर कुछ न कुछ खाने का सामान भी बाँटा जाता था, जैसे कि गुड़, मूँगफली, बतासे, आदि। घरों की दूर रहने वाली बहू, बेटियाँ, बुआ, कई और रिश्तेदार तो कई कई दिन पहले ही आ जाते थे। खास तौर पर रिश्तेदारी की बुज़ुर्ग औरतें तो पहले आ कर शादी के कामों में हाथ बँटाती थीं। क्योंकि मेरे पिता जी तो इकलौते थे, मैनें तो सभी शादियाँ ननिहाल की रिश्तेदारी में ही देखीं। मेरी उम्र की लड़कियों की शादियां मुझसे काफ़ी पहले हो गई थीं, पढ़ाई फिर नौकरी के कारण शादी के मामले में मैं काफ़ी पीछे रह गई थी, पर इसी बहाने मुझे बहुत सी शादियों में शिरकत करने का मौक़ा मिला। मम्मी के मामा टेकचंद जी छाबड़ा की बड़ी बेटी कमलेश, जो आजकल बीकानेर

में रहती है, उसकी शादी पर मैं पन्द्रह दिन रह कर आई थी, शायद मेरे कालिज़ में छुट्टियां चल रही होंगीं । मेरी सब प्यारी मासियां भी साथ थीं। मेरी मम्मी घरेलू ज़िम्मेदारियों के कारण जल्दी नहीं आ पाए थे। उस शादी में बहुत मस्ती हुई थी। अब तो सोच के भी हैरानी होती है कि उन दिनों हमारे पास कितना समय होता था। आठ दस दिन पहले ही शादी की रस्में शुरू हो जाती थीं। हर रोज़ एक नई रस्म होती।सब रिश्तेदार रोज़ ही इकट्ठे होते। दरअसल उन दिनों आज कल जितने ताम- झाम नहीं थे और बारात का खाना भी आजकल की तरह एक समय नहीं होता था। आजकल की तरह बुफे सिस्टम नहीं होता था। पापा की शादी जब हुई तब बारात तीन दिन तक ठहरती थी। फिर कम होता गया। और आजकल लोग फिर से ज्यादा फंक्शन करने लग गए हैं, जैसे कि सगाई, मेंहदी, हल्दी, बैचलर पार्टी , रिंग सेरेमनी, संगीत , लेकिन ये सब लगभग लोकल लेवल पर ही होता है। बारात का खाना एक समय ही होता है। अक्सर दूरी होने पर आजकल लड़की लड़के के परिवार वाले एक ही शहर में इकट्ठा हो जाते हैं।

पहले समय की एक बात और बताना चाहूँगी , आजकल सब कुछ काम किराए के आदमी करते हैं। खाना लगा होता है, जिसको खाना हो खाए, न खाना हो न खाए। चीज़ों की भरमार होती है। सब लोग सजसंवर कर घूम रहे होते हैं। कई औरतें तो जब पार्लर से शादी वाली जगह पहुँचती हैं, आधी रस्में हो चुकी होती हैं। पहले ऐसा नहीं होता था। जब तक बारात खाना न खा ले, वधू पक्ष के लोग खाना नहीं खाते थे। बारात को खाना कुर्सियों मेज़ों पर बाक़ायदा बिठा कर परोसा जाता था। लड़की के भाई, कज़न, गाँव के लड़के सब मिल कर यह कार्य करते थे। मुझे एक और बात याद है, शादी वाले घर की सजावट रंग बिरगें पतले काग़ज़ों को काटकर पतली रस्सी से चिपका कर करते थे और यह काम घर के बड़े बच्चों के हवाले था और मैनें भी यह काम कई शादियों में किया। आजकल यह सब कुछ शायद यश चोपड़ा की पुरानी फिल्मों में कहीं दिख जाए। जिस तरह आजकल बारात में घर की तो क्या, पूरे मुहल्ले की औरतें भी जाती है, तब औरतें बारात में नहीं जाती थीं। सिर्फ़ होने

वाली बहू के कपड़े, गहनें संभालने के लिए कोई शादीशुदा ज़िम्मेदार बहन, बुआ, यानि कि एक दो औरतें। जब बारात आती तो औरतें तरह तरह के हँसी मज़ाक़ वाले गीत बोलतीं। कई पैसे वाले लोग नाचने गाने वाली औरतें भी साथ लाते थे। उन्हें लाना बुरा नहीं माना जाता था, लेकिन धीरे धीरे घर की  औरतें देखा देखी ज्यादा होने लगी तो ज्यादा उन दिनों लड़की वाले (सिठनियां) हसीं मज़ाक़ के गीत गा कर छेड़ते थे।एक गीत मुझे आज भी थोड़ा सा याद है, जिसका  मतलब कुछ ऐसा था कि लगता है कि बारातियों के पास पैसे की कमी आ गई है, तभी तो नाचने वालियां न लाकर बहनें, भाभियाँ ले कर आए हैं। कहीं बैठने की जगह कम हुई तो मज़ाक़ के गीत, नानके दादके रिश्तेदारों की भी गीतों के ज़रिए नोंक झोंक चलती रहती थी। अत्यंत ख़ुशनुमा माहौल होता था, कोई बुरा भी नहीं मानता था, और जिसमें नकलीपन नहीं लगता था। वक़ील साहब किशन सिंह छाबड़ा जी की शादी पर बारात में जाने वाली मेरी माँ अकेली औरत थी। हमारे इलाक़े में उन दिनों आज जितने फल नहीं मिला करते थे। लोगों को कई फलों के बारे में जानकारी भी नहीं थी। वक़ील साहब की शादी की एक बात मुझे याद है जो कि पापा ने बताई थी। वक़ील साहब की शादी पर अन्य फलों के साथ चीकू रखे गए थे। बारातियों को हैरानी थी कि ये कच्चे आलू किस लिए रखे गए। मेरे पापा को पता था कि ये चीकू नामक एक स्वादिष्ट फल है , जिसे सब बारातियों ने बाद में बड़े चाव से खाया।

वक़ील साहब की बात चली है तो मैं कुछ बातें छाबड़ा परिवार की ज़रूर करूँगी । वैसे भी इस परिवार की बात के बिना मेरा ये किताब लिखने का मक़सद अधूरा है। वक़ील किशन सिंह जी छाबड़ा मेरी मम्मी के मामा जी थे। मेरी नानी पाँच भाइयों की इकलौती और सबसे बड़ी बहन थी। नानी परमेश्वरी जी के भाई थे, श्रीमान हंस राज जी छाबड़ा, श्रीमान गणेश दास छाबड़ा, श्रीमान टेक चंद जी छाबड़ा,श्रीमान खज़ान चंद जी छाबड़ा और सबसे छोटे श्रीमान किशन सिंह जी छाबड़ा। नानी जी के पिताजी श्रीमान प्रेम सिंह जी का बीकानेर रियासत के महाराजा गंगा सिंह के साथ आना-जाना था। मम्मी जी से मैनें सुना था कि, आज़ादी

से पहले वे जब भी अनूपगढ़ आते थे, उनके पास ही ठहरते थे। श्रीमान परेम सिंह जी सात भाई थे, जिनमें श्रीमान नोध सिंह जी सबसे छोटे थे। छाबड़ा परिवार और अन्य रिश्तेदारों को देव समाज से जोड़ने का श्रेय उन्हीं को जाता है। खुशकिस्मती से मैं उनसे मिली हुई हूँ और एक बार वे चंडीगढ़ मेरे घर सभा पर आए थे। उस समय छाबड़ा परिवार का अनूपगढ़ में खेती बाड़ी और आढ़त इत्यादि का बहुत बढ़िया काम था। सबसे ज़्यादा पढ़ाई करके वकालत पास करने वाले श्रीमान किशन सिहं जी छाबड़ा विलक्षण इन्सान थे। मेरे पापा और खजान चंद जी और किशन सिंह जी ने पढ़ाई श्री गंगानगर में रह कर पूरी की वो भी शादी के बाद। खजान चंद जी और मेरे पापा तो पढ़ाई करते समय कुछ समय किराए के कमरे में इकट्ठे भी रहे थे। जब भी हम मम्मी के साथ अनूपगढ़ जाते थे तो छाबड़ा परिवार जो की मम्मी के नानके थे, लेकिन हमें हमेशा वो अपने नानके ही लगते थे सब घर पास ही और हमारा उनके घरों में आना जाना लगा ही रहता था। जैसा कि गाँवों में गाय इत्यादि बांधने के लिए जगह अलग से होती है, मेरी नानी जिनको ज़्यादातर लोग भाभी कहते थे और हम सभी बच्चे भी भाभी कहते थे, वो कई बार सुबह गाय के काम और उपले बनाने जाती तो कई बार काम करते करते देर हो जाती तो नाना जी जो वैसे तो कम ही बोलते थे, लेकिन इस बात पर चुटकी लेते हुए कहते, लगता है पाँच भाइयों की इकलौती लाडली अपने मायके पहुँच गई है, अब तो उसे लेने ही जाना पड़ेगा। छाबड़ा परिवार का अपनी बहन के परिवार से इतना आत्मीय रिश्ता सच में ही मिसाल है। अब तो चाहे हर कोई अपने परिवारों में व्यस्त हो गए हैं और काफ़ी बुज़ुर्ग भी साथ छोड़ गए हैं, लेकिन कभी कोई मिल जाता है तो बीती बातें चलचित्र की तरह सामने आ जाती हैं, और मन वापिस उन गलियों में पहुँच जाता है, जैसे कि पाकिस्तान बनने के कितने सालों बाद भी दोनों तरफ़ से लोग अपनी-अपनी मातृभूमि, अपनी जन्म-भूमि के दर्शन करते आते रहते हैं। बचपन की गलियों का मोह ही कुछ ऐसा होता है। वक़ील साहब के परिवार को छोड़कर बाक़ी सभी अनूपगढ़ में ही रहते थे। चारों घर ही अपनी इकलौती बहन के बच्चों और आगे

उनके बच्चों को बहुत प्यार और मान देते थे, लेकिन मामा टेक चंद जी और गणेशदास का परिवार विशेष स्नेह रखता था। जितने दिन हम वहाँ रहते, लगभग रोज़ ही आना-जाना लगा रहता।। उन दिनों आज की तरह मेहमान को खाने के लिए एक समय का निमंत्रण नहीं होता था। अगर मेहमान के पास समय है, तो दो तीन दिन भी एक घर में खाना चलता था। जब हम लोग वापिस आते तो सभी रिश्तेदार खाने का सूखा समान जैसे कि घर के बने पापड़, बड़ियाँ, सेवइयाँ, दालें, खोया,तथा और भी कई प्रकार का स्वादिष्ट सामान काफ़ी मात्रा में तोहफ़े के रूप में देते थे। उन दिनों लोगों के पास नक़दी कम हुआ करती थी। नानी का तो हमेशा मम्मी को पक्का ही आदेश था, कि जब भी गरमी की छुट्टियों में अनूपगढ़ आना है,अपने सारे परिवार के लिए एक एक जोड़ी कपड़े अपनी पंसद के साथ खरीद कर लाना है, क्यूँकि उन दिनों वहाँ कपड़े की दुकानें आज की तरह नहीं थी। बहुत दु:ख की बात है कि बहुत सी खुशियाँ जल्दी ही खतम हो गई थीं। मात्र पैंतालीस साल की उम्र में पैरालाईसीस के अटैक से नानी जी की मृत्यु हो गई। उन दिनों इलाज़ के लिए उस इलाक़े के लोगों को बीकानेर जाना पड़ता था। पहला अटैक तो नानी जी ने झेल लिया, लेकिन जल्दी ही उन्हें दूसरा अटैक आया। बीकानेर ले जाते वक्त रास्ते में ही उन्होंने प्राण त्याग दिए। घर पर तो जैसे मुसीबतों का तूफ़ान आ गया। सुमित्रा मासी के इलावा तीनों मामा भी कुंवारें थे। राजिंद्र मामा तो काफ़ी छोटे थे। मम्मी और दोनों मासियां बारी बारी से अनूपगढ़ जा कर रहती थीं। लेकिन इस मुसीबत की घड़ी में छाबड़ा परिवार ने हर तरह से सहयोग दिया। सुमित्रा मासी की तो शादी ही वक़ील किशन सिहं जी छाबड़ा के घर उनकी नई बनी अत्यंत सुंदर कोठी में रायसिंह नगर में हुई थी। उन दिनों अनूपगढ़ में तो शायद पानी-बिजली की सुविधा भी पूर्णतया नहीं थी। भुझे याद है, शादी बहुत ही धूमधाम से हुई थी। अमर मामा जी की शादी के बाद ही घर में ढंग से चूल्हा जलना शुरू हुआ था। इसी बीच सुमित्रा मासी की शादी के बाद काफ़ी समय तक नाना जी का ख्याल छाबड़ा परिवार ने ही रखा। खाने से लेकर कपड़े धोने तक का सारा काम छाबड़ा परिवार ने खुशी-

खुशी निभाया। समय बीतने के साथ सब के अपने परिवार हो गए हैं, लेकिन आज भी जब कोई मिलता है, तो उसी प्यार और अपनेपन के साथ। आज से लगभग सात साल पहले मैं सूरतगढ़ अपनी बहन के पास गई तो मेरे पति और बड़ी बहू भी साथ थी। चूंकि वो बैंगलोर की रहने वाली है, इसलिए उसे राजस्थान घूमने का शौक़ था, वैसे भी उसे घूमने का और हमारे पुराने गांवों, घरों को देखने का मन था। मेरे ननिहाल वाले तो सारे जयपुर शिफ्ट कर गए थें। तो मैंने सोचा कि वहाँ अब किसके घर जाया जाए। छाबड़ा परिवार के कुछ घर अब भी वहाँ हैं, लेकिन काफ़ी समय से अब जाना-आना हुआ नहीं था, दूसरा कई बज़ुर्ग भी अब नहीं रहे थे। लेकिन फिर भी मैनें जाने का मन बना लिया। मम्मी के मामा जी के बेटे घनश्यामदास जी  से सम्पर्क किया और टैक्सी लेकर सुबह जल्दी निकल पड़े। पहले रामसिंह पुर रुके। वहाँ पर पापा के कज़न चाचा रामकिशन जी सेतिया से मिले और उनसे वापसी पर मिलने का वादा करके अनूपगढ़ पहुँच गए। घनश्यामदास जी छाबड़ा के घर पर हमारा ऐसा बढ़िया स्वागत हुआ, जिसे शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता। नाश्ता और लंच वहीं पर लिया। इसी बीच मैं भजनदेवी कामरा, रेशमा देवी, लछमी देवी से उनके घर जा कर मिली । ये मम्मी की कज़न और मेरी मेरी हमउमर हैं। इसके पश्चात् मैं अपने नानके घर(जो अब बिक चुका है) को देखने गई। उस समय वह घर तो बंद था, लेकिन नाना जी के भाई, बिहारीदास वाला घर खुला था। घर के  मालिक की इजाज़त लेकर मैं और नंदनी बहू घर के अंदर गए और फ़ोटो भी खींचे। काफ़ी सारा घूमकर वापिस घनश्यामदास जी के घर आए और शाम की चाय पीकर वापिस चल पड़े। वापसी में बाज़ार घूमकर थोड़ी शॉपिंग की। सब पुरानी बातें आँखों के सामने घूम रही थीं। दूर से नाना जी की दुकान भी देखी, जहाँ पर बचपन में मैं अकसर जाया करती थी और नाना जी से लेकर गुलकंद खाती थी। अब उस दुकान पर बड़े मामाजी का बेटा बैठता है। जिस कपड़े की दुकान से ख़रीदारी की, बातचीत करने पर पता चला कि वो भी दूर की रिश्तेदारों की दुकान थी, जिस ज़माने मैं हम लोग अनूपगढ़ जाया करते थे,उस समय दूरियाँ नहीं थीं, सिर्फ़ प्यार

था। सभी अपने से लगते थे। वो दुकान ममी के कज़न चाचा चौपाराम के बेटे की थी और उसने मुझे फ़ोन पर अपनी मम्मी से भी बात करवाई। उन्होंने घर पर आने का इसरार किया लेकिन समय की कमी के कारण मैंने उनसे क्षमा माँग ली। वापसी पर हम फिर से राम सिंह पुर रुके। पापा के सब  कज़नस के घरों में होकर उस घर पहुँचे जो कभी हमारा अपना था। दादा दादी का घर (अब बिक चुका था) जहाँ बचपन की बहुत सी यादें जुड़ी थीं। रात होने वाली थी, हल्की हल्की बारिश की बूँदें भी पड़ रही थीं, इसलिए वापिस सूरतगढ़ जाने की भी जल्दी थी। दादा दादी के निधन के बाद पहली बार मैं उस घर में गई थी। जो लोग अब उस घर में रह रहे हैं, उन्होंने ही वो मकान खरीदा है। वे दादा जी के जीवित रहते भी किरायेदार के रूप में वहीं रहते थे, इसलिए थोड़ी बहुत जानकारी थी। मकान ज्यों का त्यों था, कोई बदलाव नहीं किया गया था। लेकिन यहाँ मैं एक बात का ज़िक्र ज़रूर करूँगी, वो ये कि वापसी पर एक बज़ुर्ग रिश्तेदार और सात आठ बढ़ती उम्र के बच्चे बारिश में पैदल हमारे साथ ही चलते रहे, और हमारी टैक्सी जो कि नहर के पास खड़ी थी, वहाँ तक हमें छोड़ कर आए। सभी बार-बार रुकने के लिए भी कह रहे थे। लेकिन हमें वापिस आना था, इसलिए सभी से ये कहते हुए विदा ली कि अगर प्रभु इच्छा हुई तो फिर आएँगे। जब मैं सूरतगढ़ से चली थी तो मेरी बहन की सास( भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दें) ने मुझे छेड़ते हुए कहा कि था कि तुम अब वहाँ क्या करने जा रही हो, फ़ालतू मैं टैकसी का किराया ख़र्च करोगी, दादा दादी तो है नहीं और तुम्हारे मामे जयपुर शिफ्ट कर चुके हैं। दरअसल वो चाहती थी कि हम वहीं एक दिन और रुक लें, क्यूँकि अगले दिन की हमारी वापसी थी। तक़रीबन रात को नौ बजे के बाद ही हम वापिस सूरतगढ़ पहुँचे। हम सभी बहुत ख़ुश थे। जब मैनें सुबह अपनी बहन की सास की चुटकी लेते हुए कहा कि, जितने पैसे हमने टैक्सी पर ख़र्च किए, उससे दुगुने मेरी बहू को वहाँ से शगुन के रूप में मिले, तो मुस्कुराने लगी। सचमुच ही मैं कभी इस सफ़र को भूल नहीं पांऊगी । मैंने अनूपगढ़ और रामसिंह पुर जाकर न केवल अपनी यादें ताज़ा की, बल्कि बहुत

समय बाद अपनों से भी मिली और दादा दादी , नाना नानी, ममी की नानीजी के इलावा बहुत से बुज़ुर्गों को याद किया और उन्हें सच्चे मन से श्रद्धांजलि दी। मैं उन सभी की आत्मा की शांति के लिए और सभी परिवारों की सुख-समृद्धि के लिए प्रार्थना करती हूँ।

शिवदयाल मामा जी की सातवीं से लेकर ग्यारहवी तक की पढ़ाई हमारे साथ रह कर अबोहर में पूरी हुई, बाद में एग्रीकल्चर में ग्रेजुएशन उन्होंने संगरिया से की। राजिंदर मामा भी शायद कुछ समय पढ़ाई के लिए गंगानगर रहे हैं। अमर मामा जी घर में सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे इन्सान है, जिन्होंने पी. एच.डी. की हुई है और इनका बेटा आजकल अमेरिका में कार्यरत है। अच्छी बात ये हुई कि नानी जी की मौत के बाद अमर मामा जी ने कुछ साल अनूपगढ़ में पोस्टिंग ले ली थी, जिससे कि परिवार थोड़ा सँभल गया। बाद में राजिंदर मामा की पहले शादी हुई क्यूँकि शिवदयाल अभी पढ़ रहे थे और फिर शिवदयाल की भी शादी हो गई। धीरे-धीरे सब अपनी-अपनी ज़िम्मेदारियों में व्यस्त होते चले गए। अब काफ़ी परिवार जयपुर में शिफ्ट हो चुके हैं। अमर मामा जी ने अपना आशियाना बम्बई में बना लिया है। सबके बच्चों की शादियाँ हो चुकी हैं। जितना आना जाना प्यार मुहब्बत हमारे परिवारों में देखने को मिलता है, मेरे विचार से बेमिसाल है। नानी जी की मौत के लगभग पैंतीस साल बाद नाना जी ने जयपुर में राजिंदर मामा के घर अन्तिम साँस ली।

**गुगलानी परिवार यानि कि मेरा परिवारः**- बाक़ी दुनिया का तो पता नहीं, लेकिन भारतीय संस्कृति में तो लड़की को पराया धन ही माना जाता है। हम कितनी भी दलीलें दे लें, लेकिन सच्चाई यही है, और अगर सही परंपरा निभाई जाए तो, परिवार इसी से ही चलते हैं। सिर्फ़ रिश्तों का महत्व, रिश्तों की गरिमा क़ायम रखनी चाहिए। एम. ए. बी. एड. करने के पश्चात् मुझे एक साल अबोहर में प्राईवेट स्कूलों में पढ़ाने के बाद पास में ही पंजकोसी नामक गाँव में कच्ची सरकारी नौकरी मिल गई, लेकिन मेरे लिए वो पक्की साबित हुई क्योंकि बाद में मैं वहीं पर ही रेगुलर हो गई थी।अब शुरू हुई मेरे लिए लड़का ढूंढने की मुहिम। लेकिन यह काम इतना आसान नहीं था। लगता था कि उस समय मेरे

सारे परिवार के पास यही काम सबसे ऊपर था। मेरे मामे, मासियां और भी दूर पास के रिश्तेदार , इसी काम में लगे थे। मेरी माँ जब भी कहीं जाती, लोगों के पास बस एक ही सवाल होता, कि बेटी की शादी कब कर रही हो ? कुछ लोगों को तो जैसे दूसरों के कामों में ही नाक घुसेड़ना होता, अपने कामों से कोई मतलब नहीं हैं। मुझे लगता था कि लोगों के इस सवाल से बचने के लिए कुछ समय तक माँ ने ज़्यादा बाहर आना-जाना भी कम कर दिया था। एक साधारण सा परिवार, बैंक क्लर्क की साँवली सी लड़की, पाँच बहन भाइयों में सबसे बड़ी जहाँ से मोटा दहेज मिलने के आसार भी नहीं थे, की शादी होना बहुत मुश्किल हो गया था। दरअसल जो रिश्ते अपनी रिश्तेदारी में या आसपास जैसे कि अनूपगढ़, विजयनगर आदि में मिल रहे थे, वहाँ पढ़ाई की समस्या आ जाती, क्यूँकि लड़के पढ़े-लिखे नहीं थे और कोई ठीकठाक पढ़ा-लिखा मिलता तो उनके नखरे आसमान पर होते या फिर पापा को न जंचता। मेरे घर में किसी की शादी के लिए इतनी मुश्किल नहीं हुई, जितनी कि मेरी शादी के समय हुई। दस बारह घरों के बारे में तो मुझे पता है कि बात चली और किसी कारण से नहीं बनी, हो सकता है, कुछ का पता मुझे न भी हो। लेकिन मुझे कोई फर्क नहीं पड़ रह था। मैं तो अपनी नौकरी में व्यस्त भी थी और ख़ुश भी थी। यहाँ पर मैं थोड़ी सी बात उन मुश्किलों की भी करूँगी, जो उस ज़माने में यातायात की हुई। पंजकोसी जहाँ पर मेरी पहली पोस्टिंग हुई, बिलकुल ही आउट आफ वे था। अबोहर से गंगानगर जाते वक्त दो तीन स्टेशन के बाद खुईयासरवर एक गाँव मेन रोड पर है, जो अब तो काफ़ी तरक्क़ी कर गया है, लेकिन तब यानि 1973 में ऐसा नहीं था। बस वहीं तक जाती थी। वहाँ से पंजकोसी आठ किलोमीटर है, जहाँ पर पहुँचने के लिए साईकिल की ज़रूरत पड़ती थी, जो कि मैनें बाद में रख लिया था और चंडीगढ़ से जो कालका मेल रात को नौ दस बजे चलती है, वो सवेरे साढ़े छः बजे के क़रीब पहुंचती है, वो पंजकोसी होकर जाती है। लेकिन गाँव पाँच किलोमीटर और आगे है। स्टेशन से एक किलोमीटर कच्चे रास्ते पर चलकर सड़क आती है, जहाँ पर एक ताँगा मिलता था। वो गांव के शुरू में ही रुक जाता था,

अगला पंद्रह मिनट स्कूल का रास्ता सामान सहित पैदल तय करना होता था। लेकिन अच्छी बात यह थी कि  स्कूल में पढ़ने वाले कई लड़के अकसर मिल जाते थे, जो कि सामान स्कूल तक ले जाने में मदद कर देते थे। सिर्फ इतना ही नहीं, सोने की चारपाई, जलाने की लकड़ी तथा और भी छोटी मोटी चीज़ें गाँव से  आराम से मिल जाती थीं। एक बात और बता दूँ, पंजकोसी गाँव लोकसभा में स्पीकर रह चुके चौधरी बलराम जाखड़ जी का है, जिनके बेटे चौधरी सुनील जाखड़ जी आज भी उस इलाक़े के लोकप्रिय नेता और मंत्री हैं। सरकारी स्कूल की बिल्डिंग उन्हीं के द्वारा दान दी गई थी।। स्कूल नई बनी बिल्डिंग में चलता था और जो पुराने कमरे थे, वो हमें रहने के लिए मिले हुए थे। कमरे कच्चे पक्के से थे। रोज़ आना जाना संभव नहीं था, इसलिए वहीं रहना होता था। गर्ल्ज़ स्कूल था, लेकिन को-ऐजुकेशन थी। एक दो जैंटस को छोड़ कर सारा स्टाफ़ लेडीज़ और अधिकतर कुंवारी और नई नई नौकरी लगी लड़कियाँ थीं, जो कि पंजाब के विभिन्न शहरों की थीं। लगभग बारह लेडीज़ तो रही होंगी। ग्राउंड में एक हैंडपंप लगा था और एक नल पर वाटर वर्कस का पानी निश्चित समय पर आता था। कुएँ वाले टायलेट थोड़ी दूरी पर थे। पानी साथ लेकर जाना होता था। छतें बहुत ऊँची थीं, पंखा लगाना सभंव नहीं था, सिर्फ टेबल फ़ैन ही चलते थे। स्कूल की नई बिल्डिंग अच्छी थी। उस ज़माने के और आज के ज़माने में अंतर बताने के लिए मैं ये सब बता रही हूँ।

स्कूल के एक तरफ़ चौधरी साहब की बहुत बड़ी हवेली और दूसरी और उनका बाग़ है। मिसिज जाखड़ रोज़ शाम को बाग़ जाते समय हमारे पास रुकतीं, हम सब मिलकर ताश ज़रूर खेलते। कोई समस्या होती तो भी उन्हें बताते, हमारी हर मुश्किल को तुरंत वो हल कर देतीं। स्कूल की बिल्डिंग में दिन रात सारा लेडी स्टाफ़ अत्यंत सुकून से रहता। कई बार छुट्टियों में एक दो लोग भी रह जाते थे, लेकिन गांव में किसी की मजाल नहीं कि कोई आँख उठाकर भी देख ले। मैं चार साल शादी के बाद और तीन साल शादी से पहले वहाँ रही। बहुत अच्छा समय बीता। जाखड़ जी के बाग़ में लगने वाली हर सब्ज़ी और फल हमें मिलता।उन

दिनों टी. वी नए नए आए थे। मिसिज़ जाखड़ ने कई बार हमें अपने घर बुलाकर टेलिविज़न पर फ़िल्में दिखाईं। मेरे पति भी वहाँ आते रहते थे। जब समीर बेटा लगभग तीन साल का था और पकंज दो महीने का था, तब मेरी ट्रांस्फर वहां से रोपड़ के पास हुई, जहाँ से कि मैं चंडीगढ़ अपने घर पर रह कर नौकरी कर सकती थी। लेकिन पंजकोसी स्कूल और गाँव जैसा बढ़िया माहौल फिर कभी नहीं मिला।

मैं बात कर रही थी, अपनी शादी की। काफ़ी भागदौड़ करने के बाद भी कहीं बात बन नहीं पा रही थी। मेरे पति की स्वर्गवासी शान्ता बुआ और मेरी मम्मी गुरू बहने थीं, यानि कि दोनों ही आंनदपुर वाले गुरू को मानती थीं और अकसर  अबोहर में कुटिया में मिलती रहती थीं। दोनों की आपस में बातचीत हुई, तो मम्मी ने मेरी शादी के बारे में चिंता प्रकट की तो बुआ जी को भी अपने चंडीगढ़ में रहने वाले भतीजे के लिए लड़की की तलाश थी। बुआ जी ने मुझे देखा हुआ था। शान्ता बुआ जी बहुत ही सुलझी हुई समझदार और उस समय परिवार की शायद सबसे धनी महिला थी। उन्हें मैं पंसद थी। कुछ समय बाद ही चाचा जी के बेटे दलीप जी की शादी अबोहर में हुई, तो हमारे परिवार से मेरा स्वर्गवासी देवर अशोक ही आया था। हमारे दूर के रिश्तेदार और रिश्ते कराने में माहिर लाला नानक चंद जी अनेजा भी इस रिश्ते को कराने के लिए ज़ोर लगा रहे थे। मुझे अपनी मम्मीजी के साथ नानक चंद जीके घर पर जाना था, जहाँ पर कि अशोक के साथ कुछ और लोगों को भी मुझे देखने आना था। मैं शाम को थकी हुई पंजकोसी से आई थी कि मुझे मम्मी ने चलने के लिए कहा। मैं बिलकुल जाना नहीं चाहती थी और मुझे इस प्रकार की देखा दिखाई की रस्म पर गुस्सा भी बहुत आ रहा था। मेरे विचार में किसी भी लड़की को इस तरह स्पेशल देखना बहुत ही ग़लत है। देखना भी हो तो ऐसे देखा जाए कि लड़की को पता न हो ताकि वो सहज रह पाए। लेकिन पापाजी की भी यही इच्छा थी, तो मुझे जाना पड़ा। हम लोग नानक चंद जी के डराईंग रूम में बैठे थे कि थोड़ी देर बाद आठ दस लड़के,जिनमें काफ़ी के बाल हिप्पी स्टाइल के थे और दो तीन महिलाएँ, शायद एक स्वर्गवासी आशा बुआ जी थे।

औरतों ने तो हमसे दो चार बातें कीं, लेकिन लड़के तो बस सामने वाले दरवाज़े से अन्दर आए, और दूसरी तरफ़ से बाहर निकल गए। थोड़ी देर बाद चाय पी कर हम लोग वापिस आ गए। इन लोगों ने कोई उत्तर नहीं दिया। और इसी बीच फ़रवरी 1975 में मेरे होने वाले ससुर जो कि काफ़ी समय से बीमार चल रहे थे, उनकी मृत्यु हो गई थी। जब घर का माहौल कुछ ठीक हुआ तो शान्ता बुआ ने फिर से अपने भतीजे की शादी के बारे में सोचा। अक्तूबर 75 में विनोद कुमार जी अपनी बहन नीलम के साथ अबोहर आए और अपनी बुआ द्वारा प्रस्तावित कई लड़कियाँ देखी। आते समय बीजी (मेरी सास) ने सख्त हिदायत की थी सेतिया परिवार यानि कि मैं , वहाँ मत जाना। क्यूँकि अशोक ने मेरे साँवले रंग के कारण मुझे नापसंद कर दिया था। लेकिन होता वही है, जो ऊपर से लिख कर आता है। चंडीगढ़ जैसे सुंदर शहर में मिसिज़ गुगलानी बन कर रहना मेरे मुक़द्दर में लिखा था, जिस पर कि मुझे नाज है, रिश्ता हमारे घर ही पक्का हुआ, और वो भी बिना देखे। नीलम मेरी एक सहेली की बहन के साथ बिना बताए हमारे घर आई, और थोड़ी देर बैठकर चली गई। मेरे मम्मी पापा शांता बुआ के घर जाकर मेरे होने वाले पति को मिलकर आए थे। उन्हें लड़का पंसद था और मैं भी शायद नीलम (मेरी इकलौती नन्द) को ठीक ठाक ही लगी हूँगी, वैसे भी दोनों घर रिश्ते के लिए परेशान थे, इसलिए चंडीगढ़ जाने के लगभग एक हफ्ता बाद इनकी सहमति की टेलीग्राम आई। जब इनकी ओर से हाँ हुई तो एक और घर भी राज़ी था लेकिन पापा का मन इधर था,यह बात और है कि इन्होंने मुझे देखा नहीं, और जब इन्होंने नहीं देखा, तो मैं कैसे देखती। उसी साल गुरपूरब वाली शाम को सगाई और रिंगसेरेमनी हुई और मैनें इन्हें देखा। और मज़ेदार बात ये कि अगले दिन ही मेरी चंडीगढ़ में पक्की नौकरी होने के सिलसिले में इंटरव्यू थी। उसी रात ट्रेन में मैं, मेरे पापा, मेरा देवर शशीकांत और मेरे पति सब इकट्ठे ही आए, लेकिन हमारी कोई बात नहीं हुई। ऐसा था वो ज़माना। अबोहर में रहने वाले, और गिदड़बाहा में रहने वाली बुआ और ससुराल पक्ष के लगभग सभी पारिवारिक जन स्टेशन पर मिलने आए। सुबह जब चंडीगढ़ पहुँचे तो

मैं और पापा जी , पापा के किसी बैंक के जानकार दोस्त  के घर चले गए और ये दोनों भाई शगुन में मिले मिठाई के डिब्बों और फलों की टोकरियाँ ले कर अपने घर चले गए। मेरी इंटरव्यू सुबह जल्दी ही हो गई थी। दोपहर को मैं पापा के दोस्त की पत्नी के साथ शोले फ़िल्म देखने चली गई। शाम को शशीकांत, नीलम, और तीन चार और दोस्तों के साथ वहीं पर सैकटर 17 में आ गए और हम सबने इंडियन काफी हाउस में डोसे खाए। चंडीगढ़ मैं दूसरी बार आई थी, पहले एक बार कालिज़ टूर पर आई थी। डोसे मैनें पहली बार खाए थे। रात की ट्रेन से हमारी वापसी थी।

मँगनी और शादी के दौरान के तीन महीने बहुत यादगार रहे। मेरी ननद नीलम ने एक पत्र मुझे लिखा, लेकिन शरारत यह कि वो मेरे होने वाले पति की ओर से लिखा, लेकिन बाहर पता इनसे लिखवा लिया। इन्हें कुछ शक हो गया तो इन्होंने भी एक पत्र लिख दिया। पत्र पहुँचे स्कूल में। बिना घर वालों की इजाज़त के मैं वापिस पत्र नहीं लिख सकती थी। तीन दिन बाद मैं पंजकोसी से अबोहर आई, बड़ी मुश्किल से हिम्मत करके मम्मी जी को पत्रों के बारे में बताया और उनसें वापिस पत्र लिखने की इजाज़त माँगी। मम्मी ने पापा से पूछा। काफी सोच विचार करने के बाद पापा की परमिशन मिली और मैनें पत्र का जवाब दिया। फिर तो ये पत्रों का सिलसिला शादी तक चलता ही रहा। किसी कारणवश मेरी दादी जी मँगनी पर आ नहीं सके थे, तो जब वे जनवरी 1976 में अबोहर आए तो उन्होनें अपने होने वाले दामाद को  देखने की इच्छा प्रकट की। इनकी बुआ जी को कहा गया तो इनकी आने का प्रोग्राम फ़रवरी के पहले हफ्ते में तय हुआ। ये आकर अपनी बुआ सन्तोष सेतिया के घर ठहरे। रात को मम्मी पापा इनसे मिलने गए और अगले दिन यानि कि इतवार को सबको खाने का निमंत्रण दे आए।

**शादी बन गई एक मिसाल :-** शुक्रवार को मैं पंजकोसी से वापिस आई तो ये अपनी बुआ के लड़के राजन के साथ हमारे घर आए। संयोग से उसी रात इनके इकलौते चाचा जी भी अपनी ससुराल मुक्तसर से होते हुए अबोहर आ गए। मेरे ससुर दो भाई और चार बहनों में सबसे बड़े

थे। सभी भाई बहनों का आपस में प्यार और मेलजोल सचमुच ही बेमिसाल था, जो कि आजतक भी काफी हद तक है। अब आगे परिवार बढ़ने के कारण उतना मेलजोल भले ही नहीं रहा, लेकिन शादी ब्याह और सुख-दुख में आज भी आना जाना रहता ही है। बदकिस्मती से मैं अपने पूजनीय ससुर जी के दर्शन नहीं कर पाई, लेकिन उनके बेमिसाल व्यक्तित्व और रोबदार स्वभाव के बारे में बहुत सुना है। मैं बात कर रही थी अपनी शादी की। शनिवार यानि कि 7 फ़रवरी, 1976 को ये अपनी बुआ के परिवार और चाचा जी के साथ दोपहर के खाने पर आए। संयोग से मेरे मामा राजेंद्र चुग और मौसा कृष्ण लाल रस्सेवट भी आए हुए थे। मेरी मासी सुमिता और मौसा परेम का घर तो अबोहर में ही था। कहानी में ट्विस्ट तो ये आया कि चाचाजी ने कहा कि आज ही शादी और विदाई कर दो। मेरे घर में सब लोग हैरान कि ऐसा भी कभी सुना है। ऐसे कैसे शादी हो सकती है। घर में पहली शादी और वो भी इस तरह। जबकि मेरे दादा जी जिन्होंने मुझे अपनी बेटी माना था, क्यूँकि पापा इकलौते ही थे और कन्यादान भी दादी दादा ने ही करना था। और फिर इन्तज़ाम। पापा की समझ में नहीं आ रहा था कि ये कैसे संभव हो सकता है। पापा ने पहले तो साफ़ मना कर दिया, लेकिन फिर दादी, मम्मी, मौसा, मामा और बाकी लोगों ने सलाह मशवरा किया, सारी योजना बनाई ,तो तय हो गया कि शादी अगले दिन यानि इतवार आठ फ़रवरी को होगी।

जिसे चाचा जी ने मान लिया। सबके चेहरे पर ख़ुशी की लहर दौड़ गई और सबने शाम के पाँच बजे के बाद लंच किया और शादी की तैयारी में जुट गए।

ससुराल पक्ष के लोग बुआ जी वगैरह तो खरीदारी करने के लिए गंगानगर गए और ज़रूरी कपड़े गहने ख़रीदे और सुबह पहनने के लिए मेरा ब्लाउज़ रातों रात सिलवाया। मैं और मम्मी जी बाज़ार रवाना हुए और ख़रीदारी की। ढंग का चूड़ा नहीं मिला, तो नक़ली सा लेना पड़ा। मुझे याद है, हमारे घरों और दूर पास के जानकारों में भी जितनी शादियाँ हुई थी सबके लिए अबोहर से असली हाथी दाँत का चूड़ा पापा लेकर भेजते थे, लेकिन अपनी बेटी के लिए नहीं मिला क्योंकि उसे समय से

पहले आर्डर पर बनवाना पड़ता था। जैसे तैसे ज़रूरी समान ख़रीदा। पापा और बाक़ी सब अगले दिन की तैयारियों में जुट गए। सबसे बड़ी ड्यूटी प्रेम कुकड़ मौसा जी की, जिन्हें रातों रात अनूपगढ़ और राम सिंह पुर से सारे रिश्तेदारों को इकट्ठे करके लाना था। आज जैसे संचार के साधन तो थे नहीं। दूर दूर तक फ़ोन नहीं थे और न ही आज जैसी गाड़ियों की सुविधा थी। लेकिन मौसा जी भी कहाँ कम थे, सबको ट्रक में बिठा कर लाए। यहाँ तक कि जैतसर से मेरे दादाजी के बड़े भाई पूजनीय निहालचंद जी को भी ले आए थे। ऐसी शादी होना 1976 के ज़माने में बहुत बड़ी बात थी। उन दिनों शादी के समय लड़की फेरों के समय पूरा घूँघट निकाल कर रखती थी। हाँ बाद में घरों में ससुर , जेठ या अन्य बड़े लोगों से घूँघट निकालने की प्रथा कुछ कम हो रही थी। लेकिन मुझे ऐसी किसी भी यानि किसी भी दकियानूसी परंपरा का सामना नहीं करना पड़ा। पढ़े लिखे होने के कारण पापा जी के विचार भी काफी खुले थे और मेरे पति और सास तो उनसे भी चार क़दम आगे थे। मेरे पति की हिम्मत की भी दाद देनी पड़ेगी, जिनके घर में माँ, इकलौती बहन और दो छोटे भाई चंडीगढ़ में बैठे ये नहीं जानते कि उनकी गैरहाज़री में ही भाई की शादी हो रही है। बात चल रही थी शादी की तैयारियों की। उन दिनों पूरा मुहल्ला ही अपने घर के सामान हुआ करता था। आपसी भाईचारा भी बहुत होता था। कई घरों के साथ तो साँझा चूल्हा ही था। हमारे घर के बाहर गली में मेरी माँ ने तंदूर रखा हुआ था। हमारी रोटियाँ पकने के बाद कम से कम आठ दस घरों की रोटियाँ वहीं पर बनती थीं। अब लड़की की अगले दिन होने वाली शादी की ख़बर मुहल्ले में देनी भी ज़रूरी थी और सबको शादी पर बुलाना भी था। मम्मी जी ने रात को मेंहदी और लेडीज़ संगीत का आयोजन कर दिया और रेनूका, बबीता , राजन की ड्यूटी लगी सबके घर जाकर निमंत्रण देने की और लोगों की ऐसी शादी पर होने वाली प्रतिक्रिया को झेलते हुए उनका संभव उत्तर देने का। मोंटी मेरा सबसे छोटा प्यारा भाई, जो उस समय सात आठ साल का रहा होगा, बेचारा कुछ समझ नहीं पा रहा था कि ये क्या हो रहा है। मुश्किल काम था, मेरे स्कूल के स्टाफ़ को बुलाना। गाँव

में टेलीफ़ोन सिर्फ़ डाकखाने में ही होते थे और डाकखाने भी किसी दुकान के अंदर ही होते थे। वहाँ पर या तो उनके पास संदेश छोड़ना होता था या फिर अगर बात करनी है तो उस शख्स को जाकर बुलाना होता था। और तब तक फ़ोन करने वाला इंतज़ार करता, और फिर से फ़ोन करता। सोच कर देखिए तब कैसे संदेश पहुँचते थे। इसी तरह जब मेरी शादी होने का बुलावा मेरे स्टाफ (मैं पहले बता चुकी हूँ कि लगभग सारा लेडीज़ स्टाफ़ था और सभी स्कूल में बने कमरों में ही रहते ) को मिला तो वो इस सोच में पड़ गये कि ख़बर कहीं झूठी तो नहीं। हो सकता है किसी ने मज़ाक़ किया हो। अगले दिन शादी में सारा स्टाफ़ पहुँचा, लेकिन जब तक वो मेरे घर तक नहीं पहुँचे सबके मन में संशय ही बना रहा। औरतों और स्कूल में पढ़ने वाले कई बड़े बच्चे भी शादी की खबर सुन कर पहुंच गए थे। भले ही शादी में शामिल नहीं हुए रातों रात इनके लिए भी नई पैंट क़मीज़ सिलवाई गई और सवेरे नौ बजे जनाब अपने कज़नस के साथ स्कूटर पर बैठ कर पहुँच गए। न कोई सेहरा, न घोड़ी। मेरी मम्मी के कहने पर बाद में बाजे वाले बुलाए। पापा ने रातों रात टैंट इत्यादि लगवा कर सब सजावट करवा दी। सुबह हमारा घर पूरा शादी वाला घर बन चुका था। ससुराल पक्ष के काफी रिश्तेदार लोकल या आसपास थे। सब पहुँच गए। प्रेम मौसा जी हमारे भी बहुत से रिश्तेदारों को ले आए थे। दिन में पूरे विधि विधान से शादी सम्पन्न हुई और रात की कालका मेल ट्रेन से विदाई भी हो गई। चाचा जी और मेरा भाई राजन साथ थे। चाचा जी ने चंडीगढ़ अपने घर बीस सैक्टर शादी की तार भिजवाई, जिसमें लिखा था कि विनोद की शादी हो गई है, सवेरे ट्रेन से चंडीगढ़ पहुँच रहे हैं। अब हालत चाची जी की ख़राब। वो न तो यक़ीन कर पा रही थी और न ही तार को झुठला सकती थी। उन दिनों हमारा घर बाइस सैकटर में था। किसी तरह आकर मेरी सास को बताया। अब यहाँ का माहौल देखने वाला। दोनों परिवार रात भर हैरानी में रहे। कोई नाराज़ तो कोई खुश। किसी तरह सुबह होने पर चाची जी ने अपने बेटे अनिल को स्टेशन पर हमें रिसीव करने के लिए भेजा। शायद हमारे परिवार में से नाराज़गी के मारे कोई आने के लिए तैयार

ही नहीं हुआ होगा। घर पहुँचने पर ठीक सा स्वागत हुआ। घर वालों की कुछ नाराज़गी तो जायज़ ही थी। दरअसल मेरे ससुर की लंबी बीमारी और मृत्यु के बाद सबका मन बहुत ख़राब था, इसलिए चाचा जी ने बहुत सोचसमझ कर यह फ़ैसला लिया। धीरे-धीरे सब जान पहचान वालों को और रिश्तेदारों को ख़बर मिल गई। मेरे पापा ने तो छोटा सा कार्ड छपवा कर सब रिश्तेदारों को सूचित करते हुए न बुलाने के लिए क्षमा भी माँगी। धीरे-धीरे सब ठीक होता गया। मेरी नौकरी वहीं पर रही। आखिरकार चार साल के बाद मेरी ट्रांस्फर चंडीगढ़ के पास हुई और मैनें पक्के तौर पर यहाँ रहना शुरू किया। मेरे देवर शशीकांत की और कुछ मेरे पापा की मदद से मेरी ट्रांस्फर हुई। लेकिन ज़्यादा भागदौड़ शशीकांत ने की थी। तब तक समीर पंकज दोनों का जन्म हो चुका था। फिर धीरे-धीरे परिस्थितियां ठीक होनी शुरू हो गईं। प्रभु की असीम कृपा से मेरा यह घर भी 1984 में रहने लायक बन गया था। बच्चे पढ़ लिख गए। दोनों पक्षों में छोटे बहन भाइयों की शादियाँ हो गईं। 1990 में मेरी सास का देहान्त हो गया। बच्चों की शादियाँ भी हो गई। सब ठीक से चल रहा था कि 2010 में पापा जी और 2014 में मम्मी जी के इलावा ससुराल पक्ष के बहुत से बुज़ुर्ग भी सदा के लिए साथ छोड़ गए। लेकिन मेरे बड़े देवर अशोक की असामयिक मृत्यु का सारे परिवार को बहुत दुःख हुआ।

ऊपर जो कुछ भी मैंने लिखा, ऐसा लग रहा है कि यादों में मैंने फिर से अपना जीवन दोबारा जीया है।

# कुछ अनमोल रत्न

पुस्तक के इस अन्तिम भाग में मैं कुछ ऐसे लोगों का ज़िक्र करूंगी जिन्हें मैं परिवार के अनमोल रत्न मानती हूँ । ऐसे लोग परिवार के लिए एक मिसाल होते हैं। वे सिर्फ़ उन्हीं के नहीं हैं या थे जिनकी उनसे पास की रिश्तेदारी है, दूर के रिश्तेदार हो कर भी वे अपने से लग सकते हैं। एक और बात , यह भी ज़रूरी नहीं कि हमारा उनसे बहुत लंबा साथ रहा हो, या हम उन्हें बहुत बार मिलें हों , उनसे बहुत बातें की हों। मेरे परिवार में कुछ लोग  बहुत ही प्रभावशाली व्यक्तित्व के स्वामी हैं या थे। जाने अनजाने मैं मैनें उनसे बहुत कुछ सीखा, और कुछ बातें तो अनुवांशिक ही होती हैं। अपने माता-पिता तो सबको अच्छे लगते हैं, लेकिन यहाँ पर मैं कुछ और रिश्तेदारों की बात करूँगी जिनसे मैं बहुत प्रभावित रही और उनसे बहुत कुछ सीखने को मिला। मैं तो ऐसे लोगों को परिवार के पेड़ की जड़ें मानती हूँ, या एक बड़े महल की नींव। कयोंकि वही पेड़ फलता फूलता है, जिसकी जड़े मज़बूत होती है। मेरी किताब में ज़्यादा ज़िक्र  मेरे ननिहाल परिवार का है, क्यूकिं मेरे पापा तो इकलौते थे, और नानी जी का परिवार भरा पूरा। एक तो मेरे माताजी सब भाई बहनों मे सबसे बड़े थे, दूसरा नानी जी की जल्दी मृत्यु होने के कारण सब का आपसी जुड़ाव कुछ ज्यादा ही था। मैंने अपने जीवन में यह महसूस किया है कि जब बड़ों का आपसी प्यार और मेलजोल होता है, तो छोटे  भी घुलमिल जाते हैं और अगर बड़े ही नहीं मिलते तो छोटे कहाँ से मिलेंगे। सब कुछ अच्छा होने के बाद भी परिवार में एक दो उदाहरण ऐसे हैं, जिनसे कुछ मज़बूरियों के चलते मेलजोल कम रहा, जिससे दूरियाँ बढ़ती गईं और सब अपने आप में मस्त हो गए। जो भी इस दुनिया में आया है, जैसा भी है, ज़िन्दगी काट कर चला जाएगा ,लेकिन हम इस दुनिया में ज़िदगी काटने नहीं ज़िंदगी जीने आए हैं, बल्कि यूँ कहें कि ज़िंदगी हँसी खुशी बिताने आए हैं। ज़िदगी में हमारा मक़सद

सिर्फ़ पैसा कमाना ही नहीं होना चाहिए। धन की अहमीयत से इन्कार नहीं किया जा सकता, लेकिन उससे आगे भी एक दुनिया है और वो दुनिया है रिश्तों की दुनिया, स्नेह और प्यार की दुनिया, अपनेपन की दुनिया। आज मेरी या मुझसे बड़ी उम्र के लोगों के अपने परिवार हो गए हैं और सेहत की मज़बूरियों के चलते मेल जोल भी पहले जैसा नहीं रहा, लेकिन दिलों से प्यार इज़्ज़त कम नहीं हुई। जब भी किसी पारिवारिक समारोह में मेल होता है, तो पुरानी यादें ताज़ा हो जाती है। इस कड़ी में सबसे पहले मैं ज़िक्र करूँगी मेरे नाना जी के भाई स्वर्गीय श्री सोहनलाल जी चुग का।

**स्वर्गीय श्री सोहन लाल जी चुगः**- नाना जी के छोटे भाई और मेरे नानके परिवार में सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे और स्टेट बैंक आफॅ बीकानेर एंड जयपुर में बहुत ऊँचे ओहदे से रिटायर हुए। परिवार में जयपुर में सैटल होने वाले वे पहले शख्स थे। दसवीं के पैपर देने के बाद मैं अपनी माताजी और बहन भाइयों के साथ पहली बार जयपुर गई थी और हम उनके घर पर ही आठ दस दिन ठहरे थे। पापा की बैंक की ओर से ट्रेनिंग वहाँ पर पहले से ही चल रही थी। मैं उनके व्यक्तित्व और बातचीत से बहुत प्रभावित हुई। पापा जी अकसर उनकी बातें किया करते थे। मेरे पापाजी, टेकचंद नागपाल मासड़ जी, जयलाल और अमर चंद चुग मामा जी ने भी इसी बैंक में सर्विस की है। जितना मुझे पता है, वो अपने रिश्तेदारों की यथा संभव मदद करते थे और बहुत ही खुशमिज़ाज और मिलनसार थे। आजकल उसी घर में उनके डाक्टर बेटा बहू ने अस्पताल बनाया हुआ है और बहुत अच्छे से काम करते हुए मरीज़ों की सेवा कर रहे हैं। अब तो बहुत से रिश्तेदार जयपुर आ गए हैं। मेरी बहन रेनूका का घर उनके घर के पास है। जब भी वहाँ से निकलना होता है तो सारी यादें ताज़ा हो जाती हैं। आख़री बार मैं उनसे उनकी मृत्यु से पाँच छः साल पहले मिली थी। यह मिलने वाली बात भी बड़ी दिलचस्प है। मैं अपने पति बच्चों और देवर के साथ टैक्सी से जयपुर घूमने गई थी। मेरा देवर भी बैंक में काम करता है। कई बार मेरी उससे नाना जी के बारे में बात हुई थी। उसने वहाँ पर उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की।

हम लोग शीला मासी के घर ठहरे हुए थे। वापस जाने से एक दिन पहले उनसे मिलने का समय तो निकाल लिया लेकिन मेरे पास उनका पता नहीं था। तब मोबाईल का चलन तो था नहीं। मुझे सिर्फ़ राजा पारक ही याद था। एक बात और याद थी कि वहीं आसपास भाई अर्जुन सेतिया जी का पैट्रोल पम्प भी है। पता नही हम किस एरिया में टैक्सी में पैट्रोल डलवाने रुके तो मैनें वहीं पर बाईक पर सवार एक नौजवान से राजा पारक का रास्ता पूछा, उसने बताया कि थोड़ी सी दूरी पर है और वो भी उधर ही जा रहा है। उसने हमसे अपने पीछे आने को कहा। तब मैनें उससे यूँ ही पूछ लिया कि क्या उसे वहाँ पर सेतिया पैट्रोल पंप का पता है, तो वो बोला कि हां। वो लड़का अर्जुन भाई साहब के बेटे राजिंदर का दोस्त था। हम उसके पीछे पीछे पंप पर पहुँच गए लेकिन वहाँ पर घर का कोई भी नहीं था। फिर मैनें वहाँ पर काम कर रहे एक आदमी से नाना जी के घर का पता पूछा तो वो हमारे साथ जाकर उनका घर बताकर आया, जो कि थोड़ी दूरी पर ही है। तो इस तरह हम उनसे आख़री बार मिलें। नाना जी बहुत ही खुश हुए। मेरे देवर से बैंक के बारे में बहुत सी बातें की। काफी देर बैठे रहे। ये मेरी उनसे आख़री मुलाक़ात थी। सारे परिवार में और उनके जानने वालों में उनका नाम बहुत ही इज़्ज़त ,मान और गर्व से लिया जाता है।

**स्वर्गीय श्री किशन सिँह जी छाबड़ा :** इस लड़ी में अगला नाम है, नामी वक़ील , छाबड़ा परिवार के सबसे छोटे साहिबज़ादे श्रीमान किशन सिंह छाबड़ा जी का। एक ऐसा शख्स जिसके मुँह पर मैनें कभी गुस्सा नहीं देखा। हर समय चेहरे पर मीठी सी मुसकान। मेरे ख्याल में वो अपने से ज़्यादा दूसरों के बारे में सोचते थे। ग़लत बात को समझाने का तरीक़ा भी प्यार भरा। वो मेरे माताजी के सगे मामा जी थे। शादी के बाद काफी पढ़ाई की और फिर वकालत पास करके प्रैक्टिस की। उस ज़माने में जब हमारे घरों में लोग दसवीं भी पास नहीं करते थे, उन्होनें वकालत पास की। उनकी पढ़ाई करने में उनकी पत्नी श्रीमती पुष्पा छाबड़ा जी के सहयोग की भी बहुत बड़ी भूमिका रही। वकील साहब के माता-पिता जी इस दुनिया में नही थे। भाइयों के सहयोग से ही पढ़ाई की।

देखिए वह भी क्या ज़माना था। पतिदेव दूसरे शहर में पढ़ रहे है। कमाई का कोई साधन नहीं है। पत्नी ससुराल में रह रही हैं। जो ख़र्चा घर वाले दे रहे हैं, उसी में गुज़ारा चल रहा है। उन दिनों लोगों के पास कैश कम होता था। कुछ चीज़ों की पैदावार खेतों में हो गई, कुछ घर में बना ली। बाज़ार की खरीददारी बहुत कम होती थी। मेरे पापा ने भी पढ़ाई इसी प्रकार से की थी। छाबड़ा परिवार का आपसी प्यार सचमुच में ही अनूठा था और अब भी है। ऐसे परिवार से होना बहुत गर्व की बात है। वक़ील साहब का नाम आते ही देव समाज का नाम अपने आप ही आएगा। कुछ लोगों ने तो शायद देव समाज का नाम ही नहीं सुना होगा। यहाँ पर मैं देव समाज की थोड़ी सी चर्चा करूगीं । मुझ तुच्छ की क़लम इस लायक नहीं कि देवसमाज जैसी अति उच्च समाज की चर्चा कर सके। मैं तो पहली श्रेणी की हूं, लेकिन मैं इसे भी अपना सौभाग्य मानती हूँ। देवसमाज बहुत ही उच्च कोटि का धर्म है। अकसर लोग देव समाज और आर्य समाज को एक ही समझते है, लेकिन ऐसा नहीं है। देव समाज एक साईंस पर आधारित धर्म है,यह धर्म नेचर के नियमों को मानता है। विकासवाद के नियमों को मानता है। उनके अनुसार सत्य की जय होती है, मिथ्या की कभी जय नहीं होती। जिसके संस्थापक परम पूजनीय श्री सत्यानंद जी अग्निहोत्री थे,जिन्हें परम पूजनीय भगवान देवात्मा कहते है। उन्होंने रुड़की इजिनिंयरिंग कालिज से पढ़ाई की थी और कुछ समय वहाँ पर नौकरी भी की। सन् 1873 में लाहौर आ गए। उस समय हमारे समाज में अंध विश्वास, मिथ्या विश्वास , नीच गतियों , रिश्वत खोरी, नशा खोरी का बोलबाला था। 32 वर्ष की उम्र में ही उन्होनें कहा कि ''सत्य शिव सुन्दर ही मेरा,परम लक्ष्य होवे;जग के उपकार ही में जीवन यह जावे।'' उच्चारण करके एक बहुत बड़ी पब्लिक सभा में अपना अद्वितीय जीवन व्रत ग्रहण किया। इस धर्म में प्रवेश करना बहुत बड़े सौभाग्य की बात है। इस धर्म में मानने वाले लोगों की गिनती मायने नहीं रखती, मायने रखता है उनका जीवन। जिस घर परिवार में देवसमाजी रहते हैं, वहाँ तो वैसे ही स्वर्ग है। क्योंकि देवसमाज का मैंबर यानि कि सेवक बनने के लिए आठ पाप छोड़ने होते हैं। जैसे कि सब प्रकार के नशे, मांसाहार,

जुआ, चोरी, रिश्वत , झूठी गवाही, जाल साज़ी, व्यभिचार, और हत्या। परम पूजनीय भगवान देवात्मा द्वारा लिखित पुस्तकों में जीवन के हर पहलू पर लिखा गया है। मनुष्य की उत्पत्ति , विकासक्रम, अस्तित्व, अनुराग, मनुष्य आत्मा के बारे में, पारिवारिक अनुष्ठानों के बारे में, अपनी हीनता और त्रुटियों को पहचानने और उनको दूर करने के बारे में। इस धर्म को मानने वाले सेवकों को मैनें हानि प्रतिशोध और रो रो कर सभाओं में अपनी गलतियों का भाव प्रकाश करते देखा है। ऐसा मैंने पहले कभी कहीं किसी भी धर्म में नहीं देखा। समय समय पर उपकारियों को याद करना , उनका आभार प्रकट करना  यहीं पर देखने को मिलता है। माता पिता, भाई बहन, पति पत्नी, पेड़ पौधों, पशु पक्षियों, नौकर मालिक के संबंधों की अच्छे से व्याख्या की गई है। इसके इलावा स्वदेश ,परलोक, भौतिक जगत, वंशीय जनों, स्वास्त्वि देवात्मा मनुष्य मात्र, साथी सेवकों के बारे में और परम पूजनीय भगवान देवात्मा के बारें में, पूरा साल समय समय पर साधना की जाती है। देव समाज का हैंड आफिस सैकटर 36-बी, चंडीगढ़ में किसान भवन के सामने है। ये सिर्फ़ एक धर्म ही नहीं है, शिक्षा का भंडार भी है। जब पढ़ाई लिखाई का इतना चलन नहीं था, भगवान ने लड़कियों की पढ़ाई करवाने का बीड़ा उठाया। तब की ये शुरूआत आज खूब फलफूल चुकी है। फिरोज़पुर, अंबाला , मोगा, दिल्ली, पलवल, चंडीगढ़, श्री अकबरपुर के रामपुराफूल रायपुरानी गुड़गांव आदि में उच्च कोटि के स्कूल कालिज हैं, जो कि भारत के अग्रणी शिक्षण संस्थान हैं। दिसम्बर 2014  में परम पूजनीय भगवान देवात्मा का 164वाँ पावन जन्म दिवस था। हर साल इस पावन दिन को बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। यह उत्सव चार दिन तक चलता है। सुबह शाम की सभाओं के इलावा और भी बहुत से कार्यक्रम होते हैं। सारे देश के देव समाज के स्कूलों कालिजो के बच्चे अध्यापक , सेवक तथा और भी बहुत से लोग हिस्सा लेते हैं। हमारे परिवार में देव समाज के सेवक बनने वाले  पहले आदमी श्रीमान नौध सिंह जी छाबड़ा  थे, जो कि वक़ील साहब के चाचा जी थे। जो मेरी माताजी के नाना जी सरदार प्रेम सिंह जी के छोटे भाई थे। बचपन से ही मैंने उनके  और उनकी पत्नी के

बारे में और देव समाज के बारे में अपनी माता जी से सुना था। सब उनकी बहुत तारीफ़ करते थे। बहुत पुरानी बात है , जब मेरे दादी जी का आँखों का आप्रेशन होना था। हम लोग तब अबोहर में रहा करते थे। उन दिनों हर जगह आँखों का आप्रेशन नहीं होता था। सबसे पास हमें तब मोगा ही पड़ता था। मेरे पापा जी और दादी जी आपरेशन के बाद दो तीन दिन तक उनके पास ही रहे थे। मेरे दादी जी हमेशा उनकी तारीफ़ करती थीं, कि उन्होंने उनका बहुत ध्यान रखा। उनकी लिखी किताब मृत्यु से जीवन की और पढ़ कर पता चलता है कि देव समाज में आकर कैसे लोगों का जीवन बदलता है। बुराई से अच्छाई की ओर या अच्छाई से और अच्छाई की ओर जाने की राह दिखाई पड़ती है और अपनी आत्मा का भला करने की चाह जागृत होती है। फिर जब वक़ील साहब देव समाज में आए, उसके बाद तो जैसे सारा छाबड़ा परिवार ही देव समाज में आ गया। महोत्सव पर अनूपगढ से पूरी बस भर कर आती थी और साथ में बहुत सारे फल सब्ज़ियां जो कि उनके अपने खेतों की पैदावार होती थी लाते थे। वक्त के साथ और भी बहुत से रिश्तेदार और जानपहचान वाले महोत्सव पर, सोलन सत्संग में तथा और प्रोग्रामों में नियमित रूप से आते थे। यह सिलसिला आज भी जारी है। अनूपगढ और आसपास के इलाक़े में कितने ही धर्म संबंधी हैं, वक़ील साहब की भतीजी श्रीमती भजनी देवी और उनके पति हिम्मत सिहं जी कामरा जो कि श्री मान मोहन लाल छाबड़ा जी के बहन बहनोई हैं, उन्होंने अपने स्थान में ही देव समाज का मंदिर बनाया है, जहाँ वह नियमित सभाएँ करते हैं। जिससे अपने साथ-साथ और भी जनों का भला करने में सहायक होते हैं। भले ही सब आने वालों ने सेवकी ग्रहण नहीं की, लेकिन जुड़ाव तो है।

मैं परिवार की पहली लड़की थी, जिसकी ससुराल चंडीगढ़ में थी। अक्तूबर 1975 में मेरी सगाई हुई और दिसंबर में महोत्सव पर वक़ील साहब और बहुत से रिश्तेदार चंडीगढ़ आए तो, सबको मेरे ससुराल जाने का चाव था। दरअसल उन दिनों हमारी सारी रिश्तेदारी लगभग ज़िला गंगानगर में ही थी। चंडीगढ़ सबके लिए नया था। सब लोग मुझसे पहले

ही मेरा घर देख गये थे, क्योंकि मेरी शादी फ़रवरी 1976 में हुई थी। मुझे भी हर साल महोत्सव के साथ साथ अपने रिश्तेदारों को मिलने का इंतज़ार रहता था। मुझे बहुत ख़ुशी है कि परिवार के बहुत से और रिश्तेदारों का आशियाना भी अब चंडीगढ़ में ही बन गया है। जब कभी सब इकट्ठे होते हैं तो बहुत ही अच्छा लगता है। सच कहूँ तो पहले पहल मुझे यहाँ पर अपने मायके वालों की बहुत याद आती थी, क्योंकि वह तो कम ही आ पाते थे, लेकिन देव समाज के कारण वक़ील साहब तथा और रिश्तेदार कई बार आ जाते थे। वक़ील साहब तो जब भी चंडीगढ़ आते , अकसर मुझसे मिलकर ही जाते थे। शादी से पहले मैंने सिर्फ़ देवसमाज का नाम ही सुना था, लेकिन मेरी यह ख़ुशक़िस्मती है कि चंडीगढ़ में रह कर मुझे देवसमाज से जुड़ने का मौक़ा मिला, और उसका सारा श्रेय वक़ील साहब को जाता है। उनकी प्रेरणा से ही हमने देव समाज जाना शुरू किया। जब भी वे महोत्सव पर या बीच में आते तो हमें देवसमाज की सभाओं में आने के लिए कहते। उन दिनों मेरा घर भी सेक्टर तेईस में था, जो कि देवसमाज भवन के बिलकुल पास था। वक़ील साहब की मेहनत से ही गुगलानी साहब ने देव समाज जाना शुरू किया, और कुछ सालों बाद ही सेवक बन गए। जबकि मैं कुछ साल बाद में सेविका बनी। मैं आभारी हूँ , वक़ील साहब की जिन्होंने हमें सही राह दिखाई। ऐसा नहीं कि मेरे पति में ऐब थे, लेकिन कंपनी के तौर पर चलता था। हो सकता है कि यदि वे देव समाज में न आते तो आगे बढ़ते भी देर नहीं लगती, लेकिन मैं तहे दिल से शुक्रगुज़ार हूँ , वक़ील साहब की, जिनके कारण परमपूजनीय भगवान देवात्मा की शरण में जाने का मौक़ा मिला, और हमारे परिवार का भला हुआ। घर के अच्छे माहौल के कारण दोनों बेटों की पढ़ाई लिखाई भी बहुत अच्छे से हुई, और सत गुरू की कृपा से अच्छे सैटल है। ख़ुशक़िस्मती से मेरे घर में श्री मान नौध सिंह जी के चरण भी पड़ चुके हैं। एक बार सभा पर वह मेरे घर में आए थे। घरेलू व्यस्तताओं के चलते मैं देव समाज की सभाओं में कम जा पाती हूँ , लेकिन मेरे पति नियमित रूप से जाते हैं। वक़ील साहब के परलोक गमन से सारे परिवार में जो कमी आ गई है, उसको भर पाना मुमकिन

नहीं। अन्तिम बार मैं उनसे सोलन सत्संग में ही मिली थी। अटैक के कारण वो ठीक से बोल नहीं पाते थे। शाम की सभा समाप्त होने पर उन्होंने मुझसे अपने कमरे में आने को कहा। मैं और मेरे पति काफी देर उनके पास बैठे रहे। हमारे मना करने पर भी हमारे लिए चाय बनवाई। रात होने पर हम अपने कमरे में वापिस आ गए। उनसे ये मेरी आख़री मुलाक़ात थी। जब मैं अपनी माताजी और भाई के साथ उनके श्राद्ध की सभा पर गई थी तो वहाँ पर लोगों की ऐसी भीड़ थी जैसे सारा रायकोट ही वहाँ आ गया हो। दूर दूर से लोग आए हुए थे और जो किसी कारणवश नहीं आ पाए , उनकी और से शोक संदेश आए थे। वक़ील साहब में अपने तो अपने, बेगानों को भी पल भर में अपना बना लेने की कला बख़ूबी थी। उनके बेटे सुनील में भी अपने पापा के सारे गुण हैं। श्रीमती पुष्पा छाबड़ा जी का सारे परिवार पर अगाध स्नेह है। मैनें देखा है कि सब से मिलकर वो हर्षित होती हैं, और सबके सुख दु:ख पर पहुँचती हैं। मेरी यही दुआ है कि सब पारिवारिक जन उनकी बनाई परंपरा पर चलते रहें।

**डॉ. अमर चंद चुग :** अब मैं परिवार के जिस सदस्य का ज़िक्र करूँगी वो मेरे सगे मामाजी , मुझसे सिर्फ़ दो साल बड़े, श्रीमान डा. अमरचंद जी चुग हैं, जिनका निवास स्थान आजकल मुम्बई में है। उन्होंने बैंक की सर्विस की और अति उच्च पद से रिटायर हुए हैं। लेकिन आज भी वे बैंक के काम करते रहते हैं। उन्होनें बैंकिंग पर पुस्तकें भी लिखी हैं। वे एक विलक्षण व्यक्तित्व के स्वामी हैं। अत्यधिक गुणों की खान, लेकिन घंमड लेशमात्र भी नहीं। बचपन से ही उन्हें पढ़ाई का बहुत शौक़ था लेकिन अनूपगढ़ में तो शायद तब मिडिल स्कूल ही था। बड़े भाई श्री मान जयलाल चुग जी के पास रह कर बी. काम किया। और फिर स्टेट बैंक आफ बीकानेर एंड जयपुर में नौकरी लग गई। इन्होंने स्टेट बैंक आफ इंडिया , पटियाला के इलावा ग्रामीण बैकों में भी काम किया। बी. काम के बाद एम. काम, बैकों के न जाने कितने पैपर पास किए, लॉ भी कर ली और फिर पीएच. डी. करना कोई आसान काम नहीं। मुझे तो सोच कर ही चक्कर आ जाए कि आदमी सारी उम्र कैसे पढ़ सकता

है। भगवान उनकी दिलचस्पी बनाए रखे। सबसे गर्मजोशी से मिलना, परिवार के हर सुख-दु:ख में शामिल होना, सबको सही राय देना कोई उनसे सीखें। असूलों के पक्के और डिसिप्लिन में रहने वाले इन्सान। मुंबई में वो जिस सोसायटी में रहते है, वहाँ भी उनका बहुत रुतबा है और वे साँझी समस्याओं को दूर करने का प्रयास करते ही रहते हैं। कंप्यूटर में बहुत रुचि रखते है। एक ऐसा इन्सान जिसे किसी से कोई गिला शिकवा नहीं। सारा परिवार इन्हें इतना मान देता है कि बाद में चुग परिवार की अगली पीढ़ी यानि कि मेरे चारों मामों के घर में जितने भी बच्चे पैदा हुए सबके नाम ही उनके नाम के पहले अक्षर अ से शुरू होते हैं। जैसे कि अमित, आशु, आशीष, आलोक,अतुल, अनिकेत, अटल, अनुपमा, अनीता आदि। यानि कि सबके नाम का पहला अक्षर अ ही है। सारे परिवार के वे स्रोत हैं। उनके उच्चशिक्षित बेटा बहू अमेरिका में हैं और बेटी दामाद भी बहुत शिक्षित और उच्च विचारों वाले हैं। बचपन से ही हम दोनों में बहुत बनती थी। हमेशा मुझे उनकी गाईडैंस मिलती रही है। ये किताब लिखने की प्रेरणा भी मुझे उन्हीं से मिली है। विदेश जा चुके हैं, लेकिन उन्हें भारत में रहना पंसद है। हमेशा मैं उनकी सेहत और दीर्घायु की प्रार्थना करती रहूँगी। ऐसे प्रतिभाशाली इन्सान पर हमारे सारे परिवार को गर्व है।

**श्रीमान कृष्ण लाल रस्सेवट :** परिवार के अगले रत्न का नाम है, श्रीमान कृष्ण लाल रस्सेवट। जितना इनको मैनें देखा, समझा , मुझे ये बहुत ही सूझवान लगते हैं। ये मेरे मौसा जी है, इनकी पत्नी यानि कि श्रीमती शीला जी बचपन में कुछ समय पढ़ाई के लिए हमारे साथ रही। तभी से हमारी ऐसी दोस्ती हुई, जो आज तक क़ायम है। आज भी हम आपस में मिलने के बहाने ढूँढते हैं, और मिलने का कोई मौक़ा नहीं छोड़ते ।बहुत ही मिलनसार और सबकी बहुत इज़्ज़त करने वाले मेहनती और ख़ुशमिज़ाज व खुद्दार इन्सान हैं। जब ये राजस्थान नहर महकमें में नौकरी करते थे तो जहाँ जहाँ भी इनकी पोस्टिंग रही मैं हर जगह इनके पास जाती थी। जब मैनें संगरिया में होस्टल में रह कर बी. एड. किया तो इत्तिफाक से मौसा जी के एक कुलीग की बेटी वहाँ पर पास में ही

स्कूल में पढ़ती थी। जब भी उसके घरवाले खाने-पीने का सामान भेजते, तो शीला मासी मेरे लिए भी ज़रूर खाने का सामान भिजवाती थी। मौसा जी ने ज़िंदगी में बहुत उतार चढ़ाव देखे हैं, लेकिन इन्होंने हर परिस्थिति का डट कर मुक़ाबला किया है। बच्चों को भी बहुत अच्छे संस्कार दिए है। भगवान से इनके लिए हर ख़ुशी की प्रार्थना करती हूँ।

और **मेरे सबसे छोटे राजिंदर मामा जी तो बेमिसाल** हैं। आठ भाई बहनों में सबसे छोटे, लेकिन ज़िम्मेदारियाँ निभाने में सबसे आगे। शायद प्रभु इच्छा भी यही थी, तभी तो इनकी शादी बड़े भाई शिवदयाल जी से पहले हो गई। इनका साथ देने में रानी मामी जी इनसे भी आगे हैं। छोटा होकर भी ये घर बड़ा बन गया। इसका मतलब ये नहीं कि बाक़ी अपनी ज़म्मिेदारियों से दूर भागते हैं। लेकिन कई बार हालात की, नौकरी की कुछ मज़बूरियाँ भी होती हैं। सभी बहुत मान देते हैं, लेकिन क्योंकि नाना जी इसी घर में रहते थे, इसलिए ये छोटे होकर भी बड़े हो गए। जब भी इनसे मिलो, बहुत ही अच्छा लगता है और इनको भी सबसे मिलने का चाव रहता है। राजिंदर मामा जी तरह तरह के खाने के बहुत शौक़ीन है। जब भी शाम को घर आएँगें , कुछ न कुछ खाने के लिए स्पेशल लेकर ही आएंगे। सेवाभाव की तो बात न पूछो। मेरे पापा जी की बीमारी के समय मैं काफी दिन इनके घर पर रही। दोनों के माथे पर कभी शिकन नहीं देखी। बच्चों की भी वैसी ही आदतें है। मैने कई घरों में देखा है कि लोग एक दो मेहमान भी नहीं रख सकते और हमारे घरों में जब सब इकट्ठे होते हैं, तो तीस चालीस तो मामूली बात है। मेरे भानजे पंकज नागपाल की शादी पर, आख़री शाम हम इनके घर आ गए थे। रात को सब वहीं पर रहें। चालीस से ऊपर लोग रहे होगें। हम सब ने खूब मस्ती की और सुबह सब रवाना हो गए, लेकिन वो साथ बिताए पल यादगार बन गए। हमारे घरों में एक और ख़ासियत है कि सब मिल कर काम कर लेते हैं और नखरे नहीं करते। हर काम में खुशी ढूँढ लेते हैं। अब धीरे धीरे काफी रिश्तेदार जयपुर ही बस गए हैं तो अकसर जाना आना लग ही रहता है। शादी ब्याह में तो दूर दूर के रिश्तेदार भी मिलते हैं। बहुत अच्छा लगता है। शिवदयाल मामा जी

भी बहुत मिलनसार है, लेकिन थोड़ी मस्त तबियत हैं। वो कमी उषा मामी जी पूरी कर देते हैं। मेरा अपनी नानी जी से तो नाता कम ही रहा है, क्योंकि जल्दी ही वो भगवान को प्यारी हो गई थी, लेकिन कुछ यादें ममी के दादी जी की ज़ेहन में है। क्या ग़ज़ब की खूबसूरत, और रोबदार महिला थीं। आजकल हम सभी दिन में सोए रहते है, लेकिन उन्हें मैनें कभी दिन में लेटे हुए नहीं देखा। सबको खुद खाना परोसती थीं। किसी की मजाल नहीं थी कि वो जूठा हाथ खाने की वस्तु को लगा दे। ख़ाली समय में चरख़ा कातती थीं। कपड़े ऐसे तह करती थी कि प्रेस करने की ज़रूरत ही न रहे। बहुत ही शानदार और गौरवशाली महिला थीं। शत शत प्रणाम है उनको।

**जयपुर में ही टेकचंद मौसा जी भी रहते हैं**, जो कि गुणों के भंडार है। सब बच्चों को उच्च शिक्षा दिलवाने में वो प्रथम हैं। सब बच्चे ऐसे संस्कारी कि प्रशंसा के शब्द नहीं है। मौसा जी भी बीकानेर बैंक से ही उच्च पद से रिटायर है। उनकी पत्नी कृष्णा मासी बहुत ही ठंडे स्वभाव की मेहनती औरत हैं। भगवान इन दोनों को लंबी उम्र और सेहत बख्शे। इनकी बेटी डा. कंचन बतरा परिवार की पहली महिला डाक्टर है। इनके पति डा. सुशील बतरा जी है। दोनों ही अति योग्य और अच्छे स्वभाव के हैं। दुआ करती हूँ कि सारा परिवार खूब खुश रहे। **अब बात करूँगी सुमिता मासी और प्रेम कुकड़ मौसा जी की।** इनका परिवार अबोहर में रहता है। इनसे मेरा बहुत समय साथ रहा है। बहुत ही मददगार हैं। काफी बड़ा परिवार है इनका, लेकिन आपसी प्यार की तो एक मिसाल है। अब तो कामों के चलते अलग घर बन गए है, लेकिन जब ये इकटठे रहते थे, तो इनके घर का चूल्हा हर समय जलता रहता था। जिस समय भी जाओ, रोटी चाय तैयार मिलती थी। सबसे हँस कर मिलना, इस परिवार की ख़ासियत है। मेरा रिश्ता मासी मौसा जी के अलावा सारे परिवार से ही बहुत खलूसपूर्ण है। जिसको भी ज़रूरत पड़ी , वो चंडीगढ मेरे घर पर बहुत अपननेपन से रहते थे। अब तो सब व्यस्त हो गए हैं, लेकिन अपनापन वही है। सुमिता मासी ने समय-समय पर मेरी बहुत मदद की। जब पापा की पोस्टिंग लुधियाना हो गई थी और मैं पंजकोसी में थी, तो

मैं काफी बार इनके पास ही रहती थी। इनके हाथ का बना खाना मैनें बहुत खाया है। बिलकुल एक माँ की तरह इन्होंने मेरा ख़्याल रखा। एक बार तो बीमारी में मेरी बहुत सेवा की। प्रेम मौसा जी स्कूटर पर मुझे पंजकोसी छोड़ कर आए। उन दिनों यातायात के साधनों की बहुत कमी थी। मासी की ननद सुवरषा जी से, और देवरानी किरण से मेरी ख़ास दोस्ती है। जब भी मैं अबोहर जाती हूँ, तो बहुत अच्छा लगता है। पुरानी गलियाँ , पुराना घर ज़रूर देख कर आती हूं। सिर्फ़ मायके का नहीं, ससुराल का पुराना घर भी वहीं पर है। मैं तो वहाँ कम ही रही हूँ लेकिन मेरे ददिया सास ससुर वहीं पर रहते थे। घर चाहे बेच दिए हैं, लेकिन यादों को कोई नहीं ख़रीद सकता और न ही छीन सकता है।

ननिहाल की बातें तो खूब हो गईं, लेकिन दादके (दादी के घर की) में किसकी बात करूँ। पापा जी तो अकेले थे, न कोई भाई न बहन। पापा के दो तायों का काफी बड़ा परिवार है, लेकिन व्यस्तताओं के चलते जाना आना कम ही होता था। मेरे ज़हन में तो सिर्फ़ **ताया गिरधारी लाल सेतिया जी की याद है।** जिनका देहांत कुछ साल पहले हुआ है। उनकी पत्नी मेरे माताजी की सगी बुआ है। इस परिवार से आज भी मधुर संबंध है। सब जयपुर में रहते है, इसलिए मिलना होता रहता है। ताया जी का व्यक्तित्व भी ग़ज़ब का था। मेरे ख़याल में अपने समय में सबसे ज़्यादा रोबदार वही थे। मजाल कि, उनके आगे कोई बोल जाए। लेकिन मज़ाकिया भी बहुत। आज इस परिवार ने अपनी मेहनत से बहुत तरक्की कर ली है। बहुत से रिश्तेदार इनके पास काम कर रहे हैं। बहुत कम लोग होते हैं, जो अपनों से मिलकर रहते हैं, लेकिन ये परिवार एक मिसाल है और क़ाबिले तारीफ़ है। अर्जुन भाई साहब, रवि या फिर महेन्द्र , जब भी मिलते हैं, बहुत ही अपनेपन से। बच्चों से तो मेरी ज़्यादा जान-पहचान है नहीं , लेकिन जितना मैनें उनके बारे में सुना है, सब बहुत ही मददगार और मिलनसार हैं। मेरी दुआ है कि सब खूब तरक्क़ी करें। मुझे गर्व है कि मैनें ऐसे गौरवशाली सेतिया परिवार में जन्म लिया।

अंत में मैं ज़िक्र करूँगी गुगलानी परिवार के उन सदस्यों का जिनसे मैं बहुत प्रभावित हूँ। बदकिस्मती से मैं अपने पूजनीय ससुर श्री जगदीश

चन्द्र  जी गुगलानी के दर्शन तो कर नहीं सकी, क्योंकि शादी से एक साल पहले ही उनका देहांत हो गया था। लेकिन उनके बारे में जितना भी मुझे पता चला, वो ये कि वे एक विलक्षण इन्सान थे। पहले उनकी नौकरी लाहौर में एक बैंक में थी, लेकिन बाद में छोड़ कर वो गिदड़बाहा (पंजाब) आ गए। फिर बाद में उनकी नौकरी शिमला में पंजाब  पुलिस में लग गई थी। और बाद में वे भी चंडीगढ़ आ गए। रहने के लिए बहुत अच्छे सरकारी क्वार्टर मिल गए थे। बहुत ही बढ़िया रोबदार व्यक्तित्व के स्वामी थे। लेकिन जल्दी ही यानि कि पचास साल की उम्र में ही बीमारी से वो चल बसे थे। परिवार पर दु:खो का पहाड़ टूट पड़ा था, लेकिन प्रभु की इच्छा के आगे किसी का ज़ोर नहीं चलता। उन्होंनें लॉ पास की हुई थी। बड़ी इच्छा थी प्रैक्टिस करने की, लेकिन सब इच्छाएँ कहाँ पूरी होती हैं। उनके होते ही तीनों बेटों कमाने लग गए थे। मेरी सास भी मैट्रिक प्रभाकर पास थी। बहुत ही शांत स्वभाव की महिला। ट्रेडिशनल सासो वाली कोई बात नहीं थी। इस मामले में मैं बहुत ख़ुशक़िस्मत रही। मेरी सास ने कभी दहेज की या मैं मायके से क्या लाई, कभी नहीं पूछा। घर के किसी भी सदस्य की फ़ालतू बातों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। शादी के चार साल बाद भी मैं पंजकोसी में नौकरी बीजी यानि कि मेरी सास के सहयोग से ही कर सकी। बहुत ही हौसले वाली और अच्छे आहूजा परिवार से ताल्लुक़ रखती थी। उन्हें गठिया रोग था। पढ़ने में बहुत दिलचस्पी थी। जल्दी  ही लगभग 65 साल की उम्र में 1990 में वे परलोक सिधार गईं। मेरे ससुर दो भाई थे, और चार बहनें थी। अब तो सिर्फ़ बड़े बुआ जी और चाची जी हैं। प्रभु से दुआ माँगती हूँ कि इनका साया परिवार पर बना रहे। बड़ों के मार्ग दर्शन की कोई क़ीमत नहीं। सभी भाई बहनों का बहुत ही प्यार और खूब आना-जाना लगा रहता था। वैसे तो मेरे पति सबसे बड़े हैं, लेकिन तीन कज़नस की शादी पहले हो चुकी थी। बाद की लगभग सभी शादियाँ मैनें अटैंड की है। चाचा जी का परिवार भी चंडीगढ़ में रहता है। मैं पहले ज़िक्र कर चुकी हूँ कि किस तरह वो मेरी शादी सादा तरीके से करवा कर लाए थे। बहुत ही ख़ुशमिज़ाज और सूझबूझ वाले ईंसान थे। हम दोनों घरों का बहुत आना जाना होता

था। लगता था जैसे एक ही घर हो। मेरी ननद की शादी पर खाने का सारा ख़र्च चाचा जी ने किया था। आज भी वो उसे अपनी बेटी की तरह ही मानते हैं। रिटायरमेंट के बाद जल्दी ही उन्हें भी प्रभु घर से बुलावा आ गया। फिर से एक बार परिवार पर ग़म के बादल छा गए। लेकिन सँभलना तो पड़ता ही है। **बड़े बेटे दलीप गुगलानी ने घर** को भी संभाला, और भाइयों की सहायता से कारोबार भी खूब चमकाया। आज वो चंडीगढ़ के नामी बिज़नेसमैन है। बहुत बड़ी बात यह है कि सारा परिवार एक ही छत के नीचे रह रहा है और सबका खाना एक ही रसोई में बनता है। चाची जी की तीन बहुएँ,और दो पोत बहुएँ , सब मिलकर रहते हैं। किसी की नज़र ना लगे और एकता यूँ ही बनी रहे, यही मेरी दुआ है। आज भी हमारा उनसे मेलजोल बरक़रार है। दलीप गुगलानी जी बहुत ही अच्छे और समय पर काम आने वाले इन्सान हैं। कई बार ज़रूरत पड़ने पर ये हमारे साथ खड़े रहे। मैं उनकी बहुत शुक्रगुज़ार हूँ। चाची जी से मेरे रिलेशन बहुत ही अच्छे हैं। जिस तरह से उन्होंने सारे परिवार को एक माला में पिरोकर रखा है, सब के बस की बात नहीं है। घर के सब सदस्य मोती जैसे होते हैं, तो घर का मुखिया रेशमी धागा होता है। कहते हैं कि मोतियों को तो बिखरने की आदत होती है, लेकिन सबको पिरो कर रखना ही रेशमी धागे का कमाल है। ऐसे बहुत कम परिवार देखने को मिलते हैं। मैं सारे परिवार की ख़ुशहाली की दुआ माँगती हूँ। जिस तरह मायके वाले काफी लोग जयपुर आ गए हैं, वैसे ही ससुराल पक्ष वाले काफी चंडीगढ़ और ज़ीरकपुर आ गए हैं। काफी मेलजोल लगा रहता है। वैसे तो सभी बुआ मेरे पति से बहुत स्नेह रखती थी, लेकिन **बड़ी बुआ जी सावित्री जुनेजा** तो इन्हें अपना भाई समझती हैं और राखी भी बाँधती हैं। उनकी दोनो बेटियाँ मिनी (नीलम सेठी) और टैनी (वीरबाला दुआ) से कुछ ज़्यादा ही दोस्ती रही। बुआ जी के बेटों और बाकी सभी कज़नस से आज भी खूब मेलमिलाप है। लेकिन **डाक्टर राजेश जुनेजा** और **एक्स सरंपच राजन सेतिया** से काफी बनती है। **डाक्टर सेठी ( बुआ जी के दामाद ) हमारे फ़ैमिली डाक्टर** और बहुत ही मिलनसार और ख़ुशमिज़ाज इन्सान हैं। डाक्टर दुआ जो कि पंजाब में डिप्टी सी. एम.

ओ. के पद से रिटायर हुए, उनकी अचानक मौत से कभी न पूरा होने वाला नुक्सान हुआ। खुशकिसमती से मैं ऐसे परिवार का हिस्सा बनी और मुझे बहुत ही मान सम्मान मिला और मिल रहा है। मैं तो चाहती हूँ कि कितने भी काम हों, सभी को आपस में समय निकाल कर मिलते रहना चाहिए।

लोग तो कहते हैं कि जीते रहे तो मिलेंगे , लेकिन मैं कहती हूँ कि अगर मिलेगें तो ज़्यादा जीयेंगे और जितना जीयेंगे उतनी खुशियाँ बाँटेंगे।

**हमेशा कोशिश करो कि कोई**
**आपसे न रूठे,**
**ज़िंदगी में अपनों का कभी**
**साथ न छूटे,**
**रिश्ता कोई भी हो,**
**उसे निभाओ ऐसे,**
**कि ज़िंदगी भर उस रिश्ते की**
**डोर न टूटे।**

# रोटियाँ

याद है मुझको आज भी कैसे, नानी पकाती थी रोटियाँ,
गूंथ कर भरी परात आटे की, चूल्हा होता या होता तंदूर।
सुंदर, पतली, बड़ी बड़ी भर कर छिक्कू और चंगेर,
सुबह शाम पकती थीं बाजरा, कनक और मक्की की रोटियाँ।
मिल जुल सब इकट्ठे होते, कहानियां सुनते, बातें करते,
बिना पूछे और बिना गिने, बस खाते जाते गरमा गरम रोटियाँ।
कभी डालते घी शक्कर और कभी डालते घर का मक्खन,
दही, लस्सी की बात न पूछो, बंद न करते बर्तन का ढक्कन।
जो भी घर में आता था, भर पेट रोटी खा कर जाता था,
जो खाना बच जाता था, पशु-पक्षियों के काम आता था।
मेहमान कोई जब घर में आए, खुशियों का सावन छा जाए,
बढ़िया खाना मां बनाए, हम सब मिल कर जश्न मनाएं,
तरह तरह के व्यंजन बनते, कर मनुहार खिलाते जाते,
चाहे कोई न-न करता, फिर भी थाली भरते जाते।
ज़मीन पे बिस्तर थे बिछाते, इक कमरे में सब लेट जाते,
आधी रात तक बातें करते, पता न चलता कब सो जाते।
आज कोई जब घर पर आए, सब के सिर पर आफत छाए,
रोटी कौन बनाएगा, चलो काम चलाते हैं, बाहर से मंगवाते हैं।
समय का रोना सबको है मिलना जुलना भूल गए, फोन पर बतियाते हैं,
'गुग' रोटियाँ अब कम पकती हैं, पिज्जा, बर्गर, नूडल्स ही मन को भाते हैं।

## मेरे पापा

जब से मैंने होश संभाला, देखे बूढ़े नहीं, एकदम जवान पापा।
सिर्फ मेरे से सत्रह साल बड़े, बाल विवाह के शिकार पापा।
बैंक के मुलाज़िम, सजते कोट, पैंट और टाई में मेरे पापा।
'देवानंद' सा कद और काठी, मेहनती, महान और ईमानदार पापा।
साईकिल पे घूमते, गन्ने चूसते, गंडेरिया बांटते, खाने खिलाने के शौकीन पापा।
मेहमानों के स्वागत को, खुले दिल से रहते हरदम तैयार मेरे पापा।
सब बच्चों को शिक्षित कर दिया, पढ़ाई के शौकीन थे पापा।
जमात में नंबर कम आने पर कार्ड पे साईन मुश्किल से करते पापा।
हँसते खेलते बड़े हुए हम और वृद्ध हो गए हमारे पापा।
बेटियाँ ससुराल भेज कर, बहुओं के भी बन गए प्यारे पापा।
नाम मात्र के सफेद बाल और मोटा चश्मा, रोब दाब वाले न्यारे पापा।
बेटी बेटे में फर्क न कोई, पोते पोतियों और दोहते दोहतियों के बड़े पापा।
समाज सेवा, देश प्रेम में कमी न कोई, प्यार की अलख जगाते पापा।
बड़ी शख्सियत, प्रभु भक्ति, हंसमुख चेहरा, हरमन प्यारे थे मेरे पापा।
छोड़ दी है भले ही दुनिया, दिलों से कभी न जायेंगे, 'गुग' दुलारे पापा।
रहेंगे एक मिसाल बन कर, रोशनी के पुंज, सचमुच थे बेमिसाल मेरे पापा।

## 1955 की सच्ची कहानी

सारे गांव में एक ही लड़का जिसने की थी दसवीं पास,
नौकरी करने का चाव था उसको, पर मां उसकी उदास।
कई जगह से बुलावा आया, पर कोई न मन को भाया,
आखिर अस्सी रुपये महीना बैंक की नौकरी का पैकेज उसे सुहाया।
बड़ी मुश्किल से, मिन्नतें करके, पापा ने मां बाप को समझाया,
आखिर दिल पर पत्थर रख कर मां ने 'हां' में सिर हिलाया।
सारे घर में फैली खुशियां, सारे गांव को चढ़ गया चाव,
रिश्तेदार थे आगे पीछे, मुंह के सब पर वाह भई वाह।
शहर चल दिए पापा, खेतीबाड़ी को करके बाए बाए,
मन ही मन में खुश थे मम्मी, होंठों से मंद मंद मुस्काए।
खूब सारे फिर गहने पहने, पहना सूट सुर्ख गुलाबी,
जूती पहन के तिलेदार, हाथ में पकड़ा पर्स उनाबी।
हर कोई घूमे आगे पीछे, शहरी सामान की लिस्ट पकड़ाई,
नम आंखों से शगुन डाल के, खुशी खुशी दी विदाई।
पहली गाड़ी पकड़ के फिर हम तीनों शहर को आए,
सुबह बैंक में दे के हाजिरी, शाम को वापिस आए।
बढ़िया सा मकान ले लिया, पांच रुपया किराया,
कुछ ज़रूरी सामान लाकर घर को था सजाया।
जब महीना खत्म हुआ तो चैक हाथ में आया,
अपनी पहली कमाई देख कर नूर चेहरे पे आया।
पचास रुपए से घर चलाया, तीस का मनीआर्डर घर भिजवाया,
सारे गांव में बंट गए लड्डे, मिलजुल सबने जश्न था खूब मनाया।
प्रभु कृपा से खुशी खुशी फिर निकल गए दिन महीने साल,
घर भी बन गया, बैंक भी भर गया, रहा न बिलकुल कोई मलाल।
सोच समझ कर खर्च थे करते, पति पत्नी दोनों थे सच्चे पक्के,

एक तनख्वाह में बरकत इतनी, पढ़-लिख कर पल गए पांचों बच्चे।
शादी ब्याह रचा कर, सब बच्चों के घर बसा कर, गंगा में नहाए,
'गुग' जब ऊपर से बुलावा आया, बैकुंठधाम प्रभु चरणों में जा समाए।

## माँ-बाप

मां-बाप को गुजरे अब हो गए कई साल,
पर याद उनकी सदा हमें करती है बेहाल।
सतरंगी ये दुनिया उन्होंने हमें दिखाई,
परख अच्छे बुरे की भी खूब करवाई।
सम्मान सहित जीने की राह है सुझाई,
शिक्षा के दहेज से की बेटियों की विदाई।
अब तो बची है यादें, जिन्हें रखें हम संभाल
मां-बाप को गुजरे अब हो गए कई साल।
लिख-लिख खत पापा करते आने का इसरार,
समय हमें न मिलता पर न कर पाते इनकार।
होली, दीवाली, राखी या कोई भी त्योहार,
तीनों बेटियों के नाम से शगुन करते वो तैयार।
बिना मां-बाप न पूछे कोई बेटियों का हाल,
मां-बाप को गुजरे अब हो गए कई साल।
बेटियों के मायके आने का रहे मां को इंतज़ार,
थैले भर भर पापा लाते, खिलाते कर कर इसरार।
महकती रहती सदा रसोई, लगे पकवानों की बहार,
देर रात तक बातें करते, मिलजुल बैठ सारा परिवार।
बचपन की खुशियां छूटी, ममता से हुए कंगाल
'गुग' मां-बाप को गुजरे अब हो गए कई साल।

## गांव प्यारा गांव

दादा दादी का वो कच्चा घर,
था इक छोटे सुंदर से गांव में।
सुबह से लेकर शाम रात तक,
खेलते सब पेड़ों की छांव में।
घर के सामने रेलवे स्टेशन,
आती जाती थी गाड़ी चार बार।
सुनने को सीटी और छुकछुक
करते हम सब बच्चे इंतज़ार
एक नहर भी साथ थी बहती,
वेग से पानी करता कल कल।
सारे गांव की प्यास थी बुझती,
मस्ती भी होती जी भर कर।
आंगन में इक पेड़ लगा था,
शहद से मीठे जिसके बेर।
सारे गांव में बंट जाते थे
फिर भी लगा रहता था ढेर।
समय बदला, मौसम बदले,
छूट गई फिर गांव की डोर।
उलझनों में कुछ ऐसे उलझे,
पता नहीं कब देखी अलभोर।
याद नहीं मिट्टी की सोंधी खुशबू,
भूली पीपल की सुंदर चौपाल।
शहर की सड़कें नापते रहते,
कभी न पूछा गांव का हाल।

भूले से जब फिर एक बार,
अचानक लगा गांव का फेरा।
सब कुछ बदल चुआ अब तो,
बचा नहीं था कुछ भी मेरा।
मिले कुछ जाने पहचाने चेहरे,
समय की पड़ गई झुर्रियां।
कुछ उग आई नई कोंपलें,
समझ रही थी सुंदर दुनिया।
वक्त भले ही कितना बदले,
मन पक्षी को तो है आज़ादी,
मेरे मन में आज भी जिंदा 'गुग'
मेरा गाँव, मेरे बाबा, मेरी दादी।

# यह मानसिकता दोहरी है

मेरे पति के एक मित्र का किसी कारणवश अपनी पत्नी से तलाक हो गया। उनके दो बच्चे थे। दोनों बच्चे उनके (अपने पिता) के साथ ही थे। परिवार वालों की लाख मनौतियों और बच्चों के पालन-पोषण को ध्यान में रखते हुए उनके लिए लड़की की खोज शुरू हो गई। कई रिश्ते देखने के बाद एक जगह बात तय होते-होते रह गई। कारण यह था कि उस लड़की के पहले पति से एक लड़का था। मेरे पति के मित्र चाहते थे कि वो अपना लड़का साथ लेकर न आए। बहुत समझाने पर भी वे इस रिश्ते के लिए राज़ी नहीं हुए। सोचने की बात यह है कि लड़की उनके दो बच्चों की मां बनने को तैयार थी, लेकिन पति के मित्र उस लड़की के बेटे को अपनाने को तैयार नहीं थे। यह दोहरा मापदंड समझ से परे था।

ज़रा सोचिए, मेरे पति के मित्र की तरह यदि सभी पुरुष सोचा सोचने लग जाएं तो ऐसी संतानों का क्या होगा, जिनके पिता की मृत्यु हो गई है? उन्हें क्या कभी पिता का प्यार और छाया नसीब नहीं होगी? तलाक होना या पति की मृत्यु होना अथवा ऐसे किसी कारण से प्रभावित हुई स्त्री और उसकी संतान का क्या दोष है? यदि वह पुरुष को दो संतानों के बाद भी अपनाने को तैयार हो, तो पुरुष को उनकी संतान के साथ अपनाने में आखिर क्या तकलीफ है? क्या वे सिर्फ अपने बच्चों के भविष्य के बारे में सोचते हैं? मुश्किल तो यही है कि स्त्री को तो पहली बार में भी अपनी पसंद बताने का अधिकार नहीं है, तो संतान की मां, तलाकशुदा या विधवा होने पर यह अधिकार कहां से मिल सकेगा। पुरुष समाज दोहरी मानसिकता से कब बाज आएगा?

## चार कसमें

पुराना साल बीत गया दोस्तो,
एक बार फिर से नया साल आया है,
नई खुशियां, नई ज्योति, नई उमंगें,
और बहारें भर-भर झोली लाया है।

हम फिर से सैकड़ों कसमें खाएंगें,
हज़ारों वादे करेंगे,
मन मन चिराग जलाएंगे,
चार दिन याद रखेंगे, अगले चार दिन याद रखने की कोशिश में निकल जाएंगे।

अगले चार दिन भूल रहे वादों को दोहराने में निकल जाएंगे,
अगले चार दिनों में दोस्तों जो नया करने का सोचा था, वो भी भूल जाएंगे।

बिना कसम खाए निभाएंगे सारी कसमें, पेड़, ऊर्जा, जल और कन्या की रक्षा करके
सारे जहाँ की खुशियां बिन मांगे पा जाएंगे,
सारे जहां की खुशियां बिन मांगें पा जाएंगे।

## गरिमा

कुछ दिन पहले मैं बैंक गई और लाईन में खड़ी होकर अपनी बारी का इंतजार करने लगी। साथ वाली लाईन वरिष्ठ नागरिकों की लाईन थी, जिसमें शायद चार पुरुष और एक महिला खड़ी थी। जब महिला की बारी आई तो पीछे खड़े बुजुर्ग ने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। महिला के एतराज करने पर वह पुरुष फबतियां कसते हुए बोला, 'वो ऐसे पहनावे और काले बालों के होते हुए वरिष्ठ नागरिक कैसे हो सकती है?' महिला ने बड़ी ही शालीनता का परिचय देते हुए कहा, 'मुझे कम उम्र का समझने के लिए धन्यवाद। लेकिन सरकार ने अभी ये कानून नहीं बनाया कि सीनियर सिटीज़न बनने के बाद कौन कितना सीनियर है, यह देखकर सीनियोरिटी का पालन करना होगा और कोई ड्रेस कोड भी लागू होगा।' इतना सुनने के बाद उन महाशय का चेहरा देखने लायक था।

27/8/08



मेरी बात »

विमला मुगलानी
चंडीगढ़

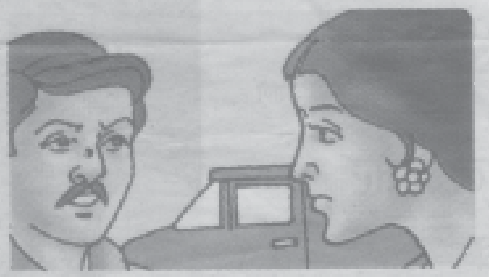

# पार्किंग बनी समस्या

पार्किंग की समस्या से कौन अवगत नहीं है। बाज़ार हो या रेलवे स्टेशन गाड़ी कहां रखें, यह समस्या आम होती जा रही है। हर तरफ गाड़ियों की ठेलमठेल मची है। अब तो कॉलोनी में भी गाड़ी कहां खड़ी करें, यह सोचना पड़ता है।

कुछ महीने पहले हमारे पड़ोस में नए किराएदार रहने आए। कुछ ही दिन बाद उनके कोई रिश्तेदार गाड़ी में उनसे मिलने आए। गाड़ी खड़ी करने की कोई जगह न मिलती देखकर, वो परेशान हो गए। हमारे साथ में ही एक घर के आगे थोड़ी जगह खाली थी और उस घर के मालिक अक्सर विदेश में रहते थे। वहां न कोई आता था न कोई जाता। उनकी परेशानी समझते हुए मैंने उन्हें वह गाड़ी उनके घर के सामने खड़ी करने की सलाह दी।

लेकिन दूसरे दिन तो आलम ही कुछ और था। सुबह-सैर करते हुए मैंने देखा कि उस मकान-मालिक का भाई काफी बड़बड़ाते हुए चिल्ला रहा था 'यह गाड़ी किसने खड़ी की?' मैंने उसे समस्या बताते हुए समझाने की कोशिश की और बड़ी मुश्किल से उसे समझाया। कुछ लोगों में सचमुच समझदारी की कितनी कमी होती है।

दूसरों की समस्या से उन्हें कोई लेना-देना ही नहीं होता। कोई खाली पड़े किए जा रहे स्थान का इस्तेमाल करे, तो आपत्ति लेना वाजिब है लेकिन ऐसी जगह जो बेकार है, जहां किसी का आना-जाना नहीं है। उस जगह का उपयोग करने पर आपत्ति उठाने का क्या मतलब?

मधुरिमा »

यादें विमला गुगलानी

# लकी फोल्डर

सन् 1965 में, मैं अपने घर कुनबे की पहली लड़की थी, जिसने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। पिताजी ने मुझे सर्टिफिकेट सम्भालकर रखने के लिए एक सुंदर-सा फाइल फोल्डर ईनाम में दिया। मैट्रिक के परीक्षाफल के एक-उस फोल्डर में एक-एक कर सर्टिफिकेट्स बढ़ते गए। एम.ए-बीएड की डिग्री, टीचर का नियुक्ति पत्र भी आज उस फोल्डर का हिस्सा बन गए हैं। देखते ही देखते रिटायरमेंट के कागजों को भी उस फोल्डर में जगह मिल गई। पिताजी के उस फोल्डर में उनका आशीर्वाद, शिक्षा के प्रति सजगता और व्यवस्थित रहने की सीख सब कुछ है।

## अब भाई बनेगा दूल्हा

मेरे भाई को एक लड़की से प्यार हो गया था। वे उससे शादी करना चाहते थे। पर समस्या यह थी कि लड़की दूसरी जाति की थी। मम्मी पापा इस वजह से कतई तैयार नहीं थे। भैया हर तरह की कोशिश करके थक चुके थे। घरवालों की मर्जी के खिलाफ वो शादी करना नहीं चाहते थे। हम लोगों ने बहुत कोशिश की लेकिन घरवाले टस से मस नहीं हुए। एक दिन इसी विषय पर बहस हो रही थी, तो वो काफी भावुक हो उठे। भाई ने कहा हम अपनी मर्जी से तो जन्म नहीं लेते, न ही अपनी मर्जी से रिश्तेदार बनाते हैं। शादी और दोस्ती तो कम से कम अपनी मर्ज़ी से करने का हक होना ही चाहिए। मुझे डर लग रहा था कि कहीं गुस्से से मम्मी-पापा भाई को कुछ कह न दे। मगर नज़ारा इसके विपरीत था। मम्मी पापा पर ऐसा असर हुआ कि वो भाई का रिश्ता उसी लड़की के साथ करने के लिए तैयार हो गए।

आधुनिक युग में संदेश पहुंचाने के कई माध्यम हैं, लेकिन इस कोड भाषा की मदद से अपनी बात कहने का तरीका काफी दिलचस्प लगा...। 7/6/12.

यह भी खूब रही

विमला गुगलानी
चंडीगढ़

# कोड भाषा



कुछ दिन पहले मेरा अपनी बहन के घर जाना हुआ। अगली सुबह जरूरी काम निपटाकर हम बाजार चले गए। वापस आकर देखा कि दरवाजे के सामने एक ईंट रखी है। बहन ने ताला खोला और हम अपने-अपने काम में व्यस्त हो गए। अगले दिन भी हम दोनों बाजार के लिए निकल गए और वापस आने पर फिर से घर के दरवाजे के सामने देखा, तो फिर से दरवाजे के ठीक सामने ईंट रखी हुई थी। और इस बार तो एक ईंट के ऊपर आधी ईंट और रखी हुई थी। मैंने अपनी बहन से पूछा, 'ये रोज-रोज यहां ईंट कौन रख देता है? कल भी यहां एक ईंट रखी हुई थी।'

बहन ने जवाब दिया, 'ये मेरी कामवाली बाई की कोड भाषा है। अगर सुबह घर में ताला लगा हुआ हो और वह आकर चली जाए, तो एक ईंट रखने का मतलब है कि वो शाम को आएगी। और यदि डेढ़ ईंट रखी मिले, तो समझो कि वह शाम को भी नहीं आएगी।' कामवाली बाई और बहन की यह कोड भाषा के बारे में जानकर मैं खूब हंसी। लेकिन मैं उसकी समझदारी की दाद दिए बिना भी नहीं रह पाई।

मेरे पापा अपने पूरे परिवार में पहले युवक थे जिन्होंने मैट्रिक पास की थी और उन्हें तुरंत बैंक में नौकरी भी मिल गई. हमारे परिवार वाले राजस्थान के एक गांव में रहते थे और खेतीबाड़ी करते थे. उस जमाने में पढ़ाईलिखाई का इतना चलन नहीं था. लेकिन पापा को शौक था इसलिए उन्होंने अपने बच्चों यानी हम पांचों भाईबहनों को खूब पढ़ाया. पढ़ाई के अलावा उन्होंने हम सभी को अच्छी पुस्तकें, पत्रिकाएं, अखबार पढ़ने को भी प्रेरित किया.

बच्चों की पत्रिकाएं जैसे सुमन सौरभ, चंदामामा, पराग, नंदन इत्यादि नियमित रूप से हमारे लिए पापा खरीदते और जैसेजैसे हम बड़े हुए उसी हिसाब से पत्रिकाएं भी बदलती रहीं लेकिन बचपन की यह आदत आज भी हम सभी में ज्यों की त्यों है.

कंप्यूटर के युग के बावजूद हम और हमारे बच्चे आज भी पत्रिकाएं पढ़ने का आनंद उठाते हैं. आज पापा हमारे बीच नहीं हैं लेकिन ऐसी अच्छी आदत डालने के लिए, जिस से मेरी जिंदगी बदल गई, उन्हें मेरा सलाम.

विमला गुगलानी, चंडीगढ़ (पंजाब) ●

मेरी बात•
विमला गुगलानी
चंडीगढ़

# अमल करना सीखें

एक बार मैं चंडीगढ़ से अमृतसर जाने वाली बस में सवार हुई। बस पूरी भरी हुई थी। बहुत से लोग खड़े भी थे। एक बुज़ुर्ग जोड़ा बहुत मुश्किल से खड़ा था। लॉन्ग रूट की बस में सीट मिलने के आसार बहुत कम होते हैं। कुछ सीटों पर लेडीज, सीनियर सिटीजन, हैंडीकैप लिखे होने के बावजूद किसी ने उन्हें सीट नहीं दी। मैंने कंडक्टर और ड्रायवर से भी कहा लेकिन इस तरफ किसी ने गौर नहीं किया। मैं यह कहना चाहती हूं कि या तो लिखे पर अमल किया जाए या फिर बसों में ऐसी व्यवस्थाएं न की जाएं, जिनका पालन ही न किया जाता हो।

मधुरिमा•

मैं एक पोस्ट ग्रेजुएट रिटायर्ड सरकारी अध्यापिका हूं. मेरे पापा ने हम तीनों बहनों को उस जमाने में कालेज में पढ़ाया और होस्टल में भी पढ़ने को भेजा जब हमारे छोटे से शहर में लोग बेटियों को स्कूल भी बहुत कम भेजते थे.

मेरे पापा की सब से बड़ी खूबी जिसे मैं भी कभी भुला नहीं पाई और जिस का जिक्र मैं यहां करना चाहती हूं वह यह है कि वे लड़कियों की हर तरह की आजादी के पक्षधर थे. मसलन, पढ़ाईलिखाई, घूमना-फिरना, अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आदि. लेकिन साथ ही उन का यह भी मानना था कि उपरोक्त गुणों के साथसाथ अगर उन्हें थोड़ीबहुत सिलाई, कढ़ाई, बुनाई भी आती है तो यह सोने पे सुहागा होगा और पाक कला में निपुणता को तो वे सुखी जीवन का अभिन्न अंग मानते थे.

इस के अलावा उन का यह भी मानना था कि लड़कियों का पहनावा शालीन और गरिमामय होना चाहिए. इस का मतलब यह नहीं कि वे फैशन करने के विरुद्ध थे, लेकिन बदन उघाड़ू कपड़ों को भी वे फैशन नहीं मानते थे. उन के अनुसार पुराने जमाने की हीरोइनों की सुंदरता पूरे कपड़ों में भी आजकल की छोटेछोटे कपड़े पहनने-वालियों से कई गुणा ज्यादा थी. ऐसे पुराने और नए विचारों का सुमेल थे हमारे पापा.

बेशक अब वे इस संसार को छोड़ चुके हैं लेकिन उन के बेशकीमती विचार अब भी हमारे साथ हैं.

-विमला गुगलानी

• आफसोस / विमला गुगलानी 17/3/15.

# पीर पराई समझ न पाई

**ससुराल को लेकर जितने ख्वाब बुने थे, वहां का माहौल उससे उलट था। इसी बात से परेशान मैं ससुरालवालों का दुख समझ ही नहीं पाई।**

पांच साल तक कैंसर से जूझने के बाद बावन साल की उम्र में मेरे ससुर का देहांत हो गया था। बीमारी के चलते उनकी नौकरी छूट गई और जमा-पूंजी खत्म हो चुकी थी। इसके एक साल के भीतर ही मेरा विवाह हो गया। पति सबसे बड़े और उनसे छोटे तीन भाई-बहन थे। घर का माहौल ग़मगीन-सा था, इसलिए हमारी शादी सादगी से हुई। ससुर जी की लम्बी बीमारी, फिर मृत्यु के दर्द से टूट चुकी सास चुप ही रहती थीं। यानी शादी के बाद जैसे ससुराल के माहौल की कल्पना की थी, वैसा कुछ भी नहीं था। कोई ख़ास शगुन, चाव, मज़ाक-मस्ती कुछ भी नहीं...। ऐसे में मुझे कई बार ग़ुस्सा आता और मैं ख़ुद को ससुराल का अवांछित सदस्य समझती। जब घर के सदस्य ससुर जी की बातें याद करते, रोने लगते, तो उन्हें दिलासा देने के बजाय दूसरे कमरे में चली जाती।

आज से पांच साल पहले मेरे पिताजी का देहांत हुआ, तो मेरे दुख की सीमा नहीं थी। मां और हम भाई-बहनों को गहरा धक्का लगा। हालांकि जाने से पहले मेरे पिताजी अपने सभी फ़र्ज़ निभा चुके थे। सब कुछ ठीक था... लेकिन आज भी पिताजी की यादें आंखें गीली कर देती हैं। मन भर आता है। अपनों को खोने का दुख क्या होता है, मेरी समझ में आ गया है। आज यह सोचकर मुझे अपने उस समय के व्यवहार पर बहुत आफ़सोस होता है। बीते वक़्त में जाकर तो अपनी भूल नहीं मिटा सकती, पर अब मैं हमेशा दूसरों का दुख बांटने का प्रयास करती हूं। •

# सही है सोच

बाजार में सब्जी खरीदते वक्त अचानक मुझे रमा ताई मिल गईं। पूरे मोहल्ले की खबर रखने वाली और अपनी इकलौती बहू की बुराई करने में मशहूर थीं, रमा ताई। मेरे साथ कुछ और भी महिलाएं थीं। उन्हीं में से एक ने रमा ताई की दुखती रग को छेड़ते हुए कहा- 'सुना है, आपकी बहू ने तीसरी बार भी बेटी को जन्म दिया है।' रमा ताई ने धीरे से 'हां' में सिर हिलाया। ज़रा भी मज़ा नहीं आया उनके इस जवाब से उनको। उन्होंने फिर कुरेदते हुए अपनी बात जारी रखी और कहा- 'मुझे पता है आपको कितना चाव है पोते का। लगता है, आपकी यह इच्छा इस जन्म में पूरी नहीं होगी। सारा कसूर आपकी बहू का ही है।'

यह बात सुनकर वह तपाक से बोलीं- 'नहीं,

## बात पते की

5/3/08

*विमला गुगलानी*

चंडीगढ़

बिल्कुल नहीं, माना कि मैं बहू की बुराई करती हूं, पर वह सिर्फ उसके गलत व्यवहार और कार्यकुशलता की कमी की वजह से। यह बात मैं उसके पीछे ही नहीं सामने भी कहती हूं ताकि उसमें सुधार हो और मैं क्या, सारे लोग उसकी तारीफ करें। लेकिन इस बात में नहीं। मेरी बहू ही क्या, दुनिया की किसी भी औरत के बस में नहीं है कि वो अपनी मर्जी की औलाद को जन्म दे। पुरुष अपनी बात रखने के लिए औरत को दोषी ठहराता है।' रमा ताई की इस दलील ने सबको निरुत्तर कर दिया और वे सोचने पर मजबूर कर दिया कि जिस सच्चाई को आज का पढ़ा-लिखा और सभ्य कहलाने वाला वर्ग स्वीकार नहीं पाया है, उसे अनपढ़ रमा ताई ने कितनी आसानी और खुशी से अपनाया है। हमेशा बहुत बोलने वाली रमा ताई ने चंद शब्दों में बता दिया कि वैचारिक क्रांति की शुरुआत घर से ही होती है।

*जन-जागृति सिर्फ सामाजिक-कार्य करना ही नहीं है...*

*प्रगतिशील विचार भी सामाजिक चेतना में बड़ी भूमिका निभा सकते हैं...*

# बिन सेहरा, स्कूटर में आए

सगाई के बाद ये अपने चाचा के साथ किसी काम से हमारे शहर में आए। पापा के आमंत्रण पर शाम को वो लोग हमारे घर खाने पर आए। वहां इनके चाचा तुरंत शादी करने की जिद् करने लगे। काफी मान मनुहार के बाद पिता जी माने और अगली सुबह की शादी तय हो गई। एक ही रात में लेडीज़ संगीत, मेंहदी, कपड़े, गहने और दूसरे इंतजाम करने पड़े। सुबह दुल्हे मियां अपने 20-25 रिश्तेदारों के साथ बिना घोड़ी, बिना सेहरा बांधे स्कूटर पर सवार हो कर आ पहुंचे। घर के दरवाजे पर ही वरमाला की रस्त पूरी की गई।

19/5/15

• मेरा मंत्र / विमला गुगलानी

# मानो पंख ही लग गए

आम औरतों की तरह मैं भी हर छोटे-मोटे काम के लिए पति पर निर्भर रहती थी। उस जमाने में न तो आज की तरह मोबाइल की सुविधा थी और न ही कम्प्यूटर थे। रोजमर्रा के कामों के अलावा बिजली-पानी के बिल भरना, गैस बुक कराना, बच्चों के स्कूल, बैंक और डाकखाने के सारे काम खुद जाकर ही करने पड़ते थे। ऊपर से नौकरी भी करती थी। मुझे किसी काम के लिए कहीं जाना हो, तो काफी असुविधा होती थी।

उन्हीं दिनों स्कूटी (लूना, हीरो मैजिस्टिक, टी.वी.एस.) का चलन शुरू हुआ। मैं साइकिल पकड़ने से भी डरती थी। पति ऑफिस के टूर पर थे। किस्तों पर गाड़ी खरीदी और बहुत हिम्मत करके भाई से उसे चलाना सीखा। जल्द ही आत्मविश्वास बढ़ गया। ऑफिस जाना आसान हुआ ही, बाहर के अन्य काम भी झटपट होने लगे। कह सकते हैं कि गाड़ी चलाना सीखते ही मेरी ज़िंदगी बदल गई। लगने लगा जैसे मुझे पंख लग गए हैं। पतिदेव का भी बोझ कम हो गया। बाद में मैंने कार चलाना भी सीख लिया। सेवानिवृत्त होने के बाद भी अपने जरूरी कामों के लिए मैं किसी पर निर्भर नहीं हूं। मैं तो यही कहती हूं कि हर महिला को ड्रायविंग जरूर सीखनी चाहिए।

**यदि आपके भी किसी मंत्र ने आपको या आपकी ज़िंदगी को बेहतर बनाने में मदद की है, तो उसे हमसे बांट सकते हैं।**

# स्वदेश लौटा बेटा

अकसर यह सुनने में आता है कि एक बार विदेश गया व्यक्ति वहां की चकाचौंध, आज़ादी और रहन सहन से प्रभावित होकर वहीं का होकर रह जाता है। वह वापिस स्वदेश नहीं आता। फिर चाहे वहां रह कर छोटे-मोटे काम करके ही गुजारा क्यों न करना पड़े, विदेश गए लोग वहां का मोह छोड़ नहीं पाते हैं। जबकि वैसे काम अपने देश में करना अपनी शान के खिलाफ लगता है। मेरे बेटे की इंजीनियरिंग करने के बाद बैंगलोर में अच्छी नौकरी लग गई। काम के सिलसिले में उसे दो-तीन बार अमेरिका और कई देशों में जाना पड़ा। कुछ समय बाद उसकी शादी हो गई। हम सभी बहुत खुश थे। लेकिन शादी के दो महीने बाद ही उसे कंपनी की ओर से अमेरिका में अधिक समय के लिए जाने का प्रस्ताव मिला, जिसे बेटा-बहू ने खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया। एक साल बीत गया। दोनों वापिस नहीं आए। जब भी फोन आता, तो बेटा यही कहता कि मां आप चिंता न करिए, मैं भारत में ही सैटल होऊंगा, लेकिन मुझे यकीन नहीं था। कुछ समय और बीत गया। एक दिन उसका फोन आया कि जल्दी ही वो लोग वापिस आ जाएंगे।

मैं बहुत खुश थी कि बेटा-बहू का मुंह तो देखने को मिलेगा। आखिरकार वह दिन आ गया। कुछ दिन इसी प्रकार खुशी-खुशी बीत गए। मैंने उनके लौटने के बारे में कुछ नहीं पूछा। मैं उनके वापिस जाने की खबर सुनना नहीं चाहती थी। घर में रोज़ बेटे की पसंद के पकवान बनते, लेकिन उस दिन मेरी हैरानी की सीमा नहीं थी, जब उसने कहा कि माँ हम दोनों सदा के लिए अमेरिका को अलविदा करके अपने देश वापिस लौट आए हैं। अब हम यही आपके पास अपने घर में रहेंगे और अपना बिज़नस करेंगे। अब तो मेरी हैरानी की सीमा नहीं थी। बेटे ने समझाया कि हमारे देश में किसी तरह की कोई कमी नहीं है। जितनी मेहनत हम बाहर जा कर करते हैं, उतनी अपने देश में करें, तो किसी को भी बाहर जाने की जरूरत नहीं। घूमने-फिरने के लिए जाना और बात है। मुझे अपना प्रोजेक्ट पूरा करना था, सो मैंने कर दिया। अब हम दोनों अपने देश में रह कर आपकी और अपनी मातृभूमि की सेवा करेंगे। आज इस बात को सात साल हो गए, पर उस दिन की स्मृति आज भी मन में बनी हुई है।